पीपीपी
शिक्षा का निजीकरण व बाजारीकरण
कानून
सरकारी स्कूलों को बदहाल
करने वाली नीतियां
एनजीओकरण
स्कूल च्वॉइस व वाउचर
विश्व बैंक
WTO-GATS
शिक्षा में मुनाफाखोरी
शिक्षा में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश
भारत
शिक्षित
कैसे बने?
सवाल आपके, जवाब हमारे
सुनील
अप्रैल 2014
किशोर भारती

पड़ोसी स्कूल : कोठारी आयोग की नजर में

''पड़ोसी स्कूल की अवधारणा के मायने हैं कि उसके पड़ोस में रहनेवाले सभी बच्चे उस स्कूल में पढ़ेंगे चाहे वे किसी भी जाति, संप्रदाय, समुदाय, मजहब, आर्थिक हालात अथवा सामाजिक दर्जे के हों, ताकि स्कूलों में कोई भेदभाव न रहे। सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकजुटता बनाने के अलावा इस प्रस्ताव के समर्थन में दो अतिरिक्त महत्वपूर्ण तर्क पेश किए जा सकते हैं। पहला, पड़ोसी स्कूल बच्चों को 'उम्दा' शिक्षा इसलिए देगा चूंकि हमारे मत में सभी [पृष्ठभूमियों के] लोगों के साथ जीवन के अनुभवों को बांटना अच्छी शिक्षा का आवश्यक तत्व है। दूसरा, ऐसे स्कूल स्थापित करने से संपन्न, सुविधाभोगी एवं ताकतवर वर्ग सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था में दिलचस्पी लेने के लिए मजबूर होंगे जिसके चलते उसमें तेजी से सुधार लाना संभव हो जाएगा।''

– शिक्षा आयोग (कोठारी आयोग) की रपट, 1964–66, खंड 10.19

पड़ोसी स्कूल का ढोंग

संसद में पारित तथाकथित शिक्षा अधिकार विधेयक, 2008 में शब्दों के चतुर खेल ने कोठारी आयोग की पड़ोसी स्कूल की उपरोक्त अवधारणा को पलटकर रख दिया है। विधेयक की धारा 3(1) और धारा 6 में पड़ोसी स्कूल के नाम पर बच्चों के पड़ोस की बात की गई है न कि स्कूल के पड़ोस की। इस तब्दीली के चलते यह संभव हो जाएगा कि सरकारी अधिकारी बच्चों को उनके पड़ोस में दिए गए घटिया स्कूलों में पढ़ने के लिए मजबूर कर सकेंगे। उदाहरण के लिए यदि बच्चे के पड़ोस में एक घटिया सरकारी स्कूल और एक उम्दा केंद्रीय विद्यालय है तो सरकारी अधिकारी तय करेंगे कि वह बच्चा किसमें पढ़े। इसके विपरीत कोठारी आयोग की उपरोक्त परिभाषा के अनुसार हरेक स्कूल का [illegible] होगा जिसमें रहनेवाले कलेक्टर, विधायक, उद्योगपति और चपरासी व [illegible] उसी स्कूल में पढ़ेंगे। इस विधेयक से उम्मीद थी कि समान [illegible] गारंटी दी जाएगी लेकिन ठीक उल्टा हुआ। लोकसभा में 4 अगस्त [illegible] विकास मंत्री श्री कपिल सिब्बल ने संसद में भ्रामक बयान दिया कि [illegible] का प्रावधान है और राज्य सरकारें इसके लिए यथोचित नियम बनाएं [illegible] विधेयक में पड़ोसी स्कूल की अवधारणा मौजूद ही नहीं है तो राज्य स[illegible] नियम कैसे बनाएंगी? विडंबना है कि यह सवाल लोकसभा में किसी भी स[illegible] उठाया और भेदभावपूर्ण बहुपरती शिक्षा व्यवस्था बरकरार रखनेवाले इस विधेयक के पक्ष में अपना मत दे दिया।

– डॉ. अनिल सद्गोपाल

भारत शिक्षित कैसे बने?

सवाल आपके, जवाब हमारे

सुनील

अप्रैल 2014
किशोर भारती

भारत शिक्षित कैसे बने?

सवाल आपके, जवाब हमारे

लेखक : सुनील

आवरण : कनक शशि

प्रथम संस्करण : अगस्त 2009 (2000 प्रतियां)
दूसरा संस्करण : नवंबर 2009 (2,000 प्रतियां)
तीसरा संस्करण : अप्रैल 2014 (1,000 प्रतियां)

प्रकाशन एवं वितरण : किशोर भारती
ई–8/29 सहकार नगर,
भोपाल 462 039, म. प्र.

मुद्रण : आर के सेक्यू प्राइवेट लिमिटेड
प्लॉट नं. 15, सेक्टर जी,
इंडस्ट्रीयल एरिया, जे. के. रोड,
भोपाल 462 021, म. प्र.

सहयोग राशि : पच्चीस रुपए मात्र

विषय क्रम

अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच के सहयोग से स्टेट प्लैटफार्म फ़ॉर कॉमन स्कूल सिस्टम, तमिलनाडु द्वारा आयोजित चेन्नई सम्मेलन, 2012 (30 जून–1 जुलाई 2012) में सुनील
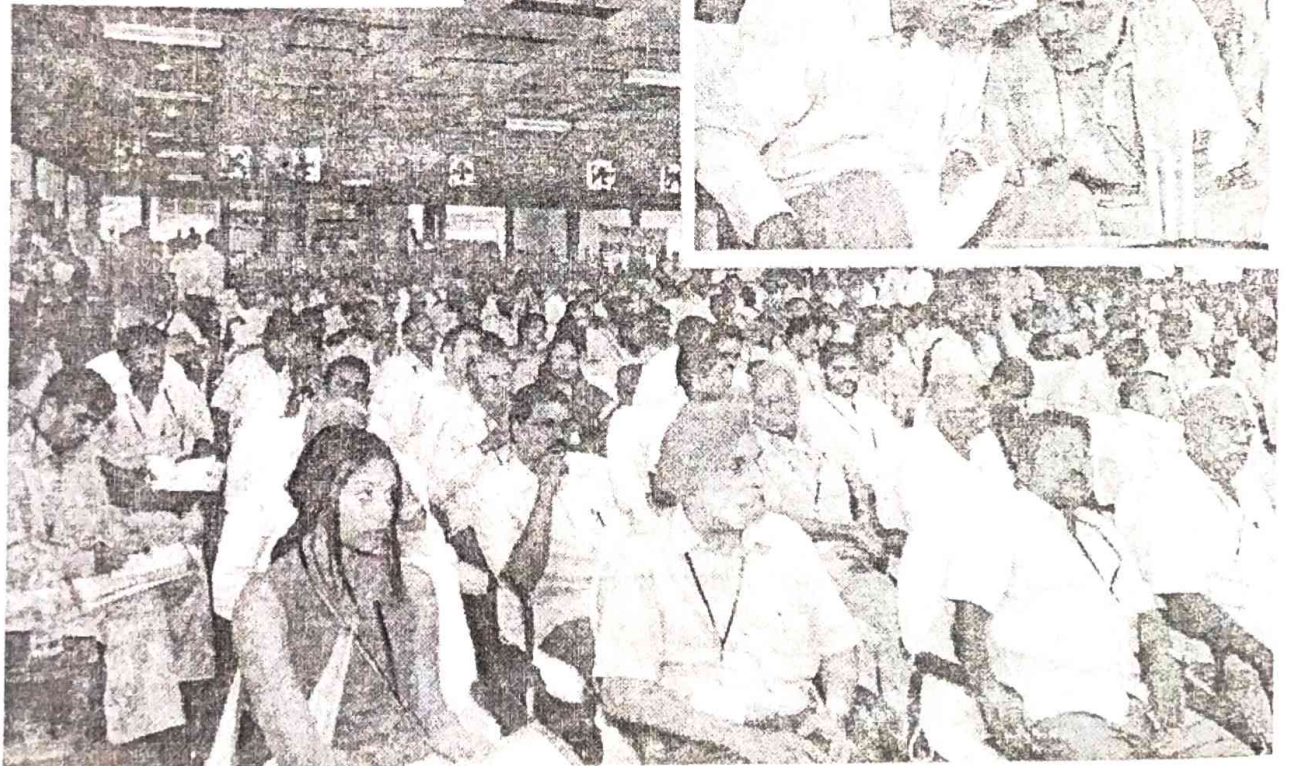
तीसरे संस्करण की भूमिका

इस पुस्तिका के तीसरे संस्करण का संदर्भ बेहद दुःखद है चूंकि इसके प्रकाशन के वक्त इसके लेखक और शिक्षा आंदोलन के एक सजग प्रहरी व संघर्षशील साथी सुनील अब हमारे बीच नहीं रहे। अप्रैल 2014 के पहले हफ्ते में मेरी उनसे 2–3 बार फ़ोन पर हुई बातचीत में मैंने उनसे आग्रह किया कि वे अपनी लोकसभा–संबंधी चुनावी व्यस्तताओं के बावजूद समय निकालकर 7 अप्रैल को शिक्षा अधिकार मंच, भोपाल द्वारा राजनीतिक दलों के साथ शिक्षा नीति पर आयोजित संवाद में समाजवादी जन परिषद का प्रतिनिधित्व करने ज़रूर आएं। उसी दौरान उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या 'किशोर भारती' द्वारा प्रकाशित उनकी पुस्तिका 'भारत शिक्षित कैसे बने?' का तीसरा संस्करण निकल सकता है। उन्होंने बताया कि जब–जब वे चुनावी सभाओं में समान शिक्षा व्यवस्था की ऐतिहासिक ज़रूरत और शिक्षा के निजीकरण और बाज़ारीकरण को रोकने की पैरवी करते हैं तो लोग इस संबंध में कुछ पढ़ना चाहते हैं। इस पर मैंने उनसे कहा कि 7 अप्रैल का कार्यक्रम हो जाने के बाद इस पर ज़रूर विचार करेंगे। मैंने यह भी सुझाया कि उनको तीसरे संस्करण की एक विस्तृत भूमिका लिखनी होगी चूंकि दूसरे संस्करण के बाद बीते पांच सालों में वैश्विक पूंजी का नवउदारवादी हमला कहीं ज़्यादा आक्रामक हो गया है और भारत में आम जनता के सामने शिक्षा का संकट भी कई गुना बढ़ चुका है। वे हमेशा की तरह इस चुनौती के लिए तैयार थे। काश; यह सच हो पाता. . . . .

तीसरे संस्करण की भूमिका लिखने की जवाबदेही निभाना मेरे लिए न केवल कष्टदायक है बल्कि मुश्किल भी है। उनके लेखन की खासियत उनकी सीधी–सादी शैली और सरल भाषा के साथ–साथ लोगों के दिलोदिमाग को झकझोर देनेवाले आंकड़े व तथ्य भी होते थे। इस मामले में उनका कोई सानी नहीं है। इस पुस्तिका की एक और कहानी साझा करना ज़रूरी लगता है। जनवरी 2009 में उन्होंने इटारसी में तब राज्य सभा में लंबित 'शिक्षा अधिकार विधेयक, 2008' पर एक सार्वजनिक सभा का आयोजन किया था। उसमें उन्होंने मुझे मुख्य वक्ता के रूप में बुलाया था। संभवतः, संसद में पेश होने के बाद उक्त विधेयक पर देश की यह पहली सार्वजनिक सभा रही होगी। उस सभा में किसी को मेरी बात पर विश्वास नहीं हो रहा था कि सरकार ने इस

कानून को शिक्षा का हक देने के लिए नहीं वरन छीनने के लिए बनाया है और इसके ज़रिए एक ओर सार्वजनिक स्कूल व्यवस्था बदहाल की जाएगी और दूसरी ओर शिक्षा के निजीकरण और बाज़ारीकरण की रफ्तार बढ़ेगी। अकेले सुनील ही वह व्यक्ति थे जिन्होंने मेरे तर्कों के पक्ष में मजबूत दलीलें दीं और आह्वान किया कि इस जन–विरोधी विधेयक के खिलाफ इटारसी में एक आंदोलन खड़ा करने की ज़रूरत है। बाद में उनकी पहल पर इटारसी में 'शिक्षा अधिकार मंच, ज़िला होशंगाबाद' की स्थापना हुई।

इटारसी की सभा में मैंने 'संसद में शिक्षा अधिकार छीननेवाला बिल' शीर्षक की अपनी प्रस्तावित पुस्तिका का प्रारूप बांटा था। वह पुस्तिका तो उसी माह छप भी गई। उसके तुरंत बाद सुनील मेरे पीछे पड़ गए कि आपको सवाल–जवाब की शैली में एक सरल पुस्तिका भी निकालनी चाहिए जो शिक्षा के अधिकार के मायने और समान स्कूल व्यवस्था के विचार को आम लोगों तक पहुंचाने में मददगार हो। तब तक भोपाल में शिक्षा अधिकार मंच का गठन हो चुका था और राष्ट्रीय स्तर पर ऐसे ही एक संगठन की तैयारी ज़ोर पकड़ रही थी। बहरहाल, मैं सुनील के आग्रह पर कोई ठोस कार्रवाई नहीं कर पाया। जब यह विधेयक राज्य सभा में पारित होकर जुलाई 2009 में लोकसभा में पहुंचा तब सुनील बेचैन हो गए। एक दिन उन्होंने मुझसे बहुत संकोच से पूछा कि क्या वे सवाल–जवाब की शैली में खुद एक पुस्तिका लिख दें। मेरे लिए इससे ज्यादा खुशी की बात और क्या हो सकती थी। इसका परिणाम यह पुस्तिका है जिसका पहला संस्करण अगस्त 2009 में प्रकाशित हुआ और तत्काल उसकी 2,000 प्रतियां बिक गईं। इसलिए नवंबर 2009 में इतनी ही संख्या में दूसरा संस्करण निकला।

दूसरे संस्करण के वक्त शिक्षा व्यवस्था के जो हालात थे उससे आज और ज्यादा बदहाल हैं। हालांकि उस समय भी सरकार पीपीपी (पब्लिक–प्राइवेट पार्टनशिप) को एक महामंत्र के रूप में पेश कर रही थी तब भी कोई यह कल्पना नहीं कर सकता था कि इसके बहाने सरकारी स्कूल कारपोरेट घरानों, धार्मिक संगठनों व एनजीओ को सौंप दिए जाएंगे, बेचे जाएंगे या नीलाम किए जाएंगे। जनवरी 2013 में मुंबई महानगरपालिका ने पीपीपी के तहत अपने सभी 1,174 स्कूलों का कारपोरेटीकरण करने की घोषणा कर दी। उसके देखा–देखी दिल्ली नगर निगम (दक्षिण ज़ोन) और उत्तराखंड की सरकार ने भी अपने

क्रमशः 50 और 2,200 स्कूल बेचने का फैसला लिया। तय है कि यह प्रक्रिया 16वीं लोकसभा के गठन के बाद गति पकड़ेगी, चाहे किसी भी पार्टी या गठबंधन की सरकार बने।

यह विडंबना है कि 'शिक्षा अधिकार कानून 2009' बनने के बाद विभिन्न प्रदेश सरकारें अपने स्कूलों को बंद करने या उनका विलयन करने की घोषणाएं कर रही हैं – कर्नाटक में 12 हज़ार स्कूल, आंध्र प्रदेश में 1,165 स्कूल और महाराष्ट्र में 2,500 से ज्यादा अनुदानित मराठी माध्यम के स्कूल शैक्षिक नक्शे से गायब होने की कगार पर खड़े हैं। उनकी जगह निजी स्कूल खुलेंगे और शिक्षा का बाज़ार फैलेगा। उक्त कानून के बाद सरकारी स्कूलों से निकलकर निजी स्कूलों में दाखिला लेनेवाले बच्चों की संख्या हर साल बढ़ती जा रही है, साथ में नए निजी स्कूलों के खुलने की रफ्तार भी। चूंकि कानून में फ़ीस वृद्धि के नियंत्रण का कोई प्रावधान नहीं है, इसलिए फ़ीसों में बेलगाम वृद्धि होना आम बात हो गई है। शिक्षा में मुनाफ़ाखोरी करना अब एक ज़ायज सिद्धांत बन गया है और इस मुनाफ़े पर कोई आयकर भी नहीं लगता! इन हालात के सामने सरकारें जानबूझकर चुप हैं और निजी स्कूल लॉबी हाईकोर्ट और सुप्रीम कोर्ट के आदेशों को धता बता पा रही हैं। इसके कारण शिक्षा का खर्च हर परिवार के लिए एक भारी समस्या बन चुका है। उसके बावजूद कोई गारंटी नहीं है कि बच्चों को महंगी फीसें चुकाने के बाद भी बेहतर शिक्षा मिल पाएगी।

दूसरे संस्करण के बाद 2010–12 के दौरान संसद में 'डब्ल्युटीओ–गैट्स एजेंडे' के तहत उच्च शिक्षा को वैश्विक बाज़ार में बिकाऊ माल बनाने के इरादे से छह विधेयक पेश किए गए जिनमें विदेशी विश्वविद्यालय लाने का विधेयक भी शामिल है।। विभिन्न कारणों से जब वे पारित नहीं हो पाए तो सरकार ने यूजीसी के ज़रिए संसद को 'बाईपास' करने का तरीका निकाल लिया – अब विदेशी विश्वविद्यालय यूजीसी के 'ट्विनिंग' सूत्र के ज़रिए खुल सकेंगे बशर्ते कि उनके साथ कोई भारतीय संस्थान जुड़ जाए। दूसरी ओर, प्रदेश सरकारों द्वारा संचालित विश्वविद्यालयों में निरंतर 'बजट कट' की खबरें आती रहती हैं जिसके चलते वे सेल्फ़ फ़ाइनेंगिस (स्व–वित्तपोषित) कोर्सेज़ शुरू करने के लिए मजबूर हो रहे हैं। जो स्कूल व्यवस्था को लेकर नब्बे के दशक में घटा वही उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अब घट रहा है यानी नियमित शिक्षकों की जगह बेहद कम वेतन पर तथाकथित 'अतिथि शिक्षक' नियुक्त हो रहे हैं जिनसे न

संस्थान को लेकर और ना ही विद्यार्थियों को लेकर किसी प्रतिबद्धता की उम्मीद की जा सकती है।

पिछले साल दिल्ली विश्वविद्यालय पर नवउदारवादी पूंजीवाद का एक सुनियोजित हमला हुआ। विश्वविद्यालय की लोकतांत्रिक व्यवस्था को ताक पर रखकर और शिक्षक व विद्यार्थी संगठनों के प्रतिरोध को अनदेखा करते हुए 3–साला स्नातक कोर्स की जगह 4–साला स्नातक डिग्री कोर्स (एफ़वाईयूपी) थोपा गया। इसका मकसद एक ओर दलित व अन्य पिछड़ी जातियों के गरीब विद्यार्थियों को दो साल के बाद वोकेशनल डिप्लोमा थमाकर विश्वविद्यालय के बाहर करना और दूसरी ओर इस प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय की गुणवत्ता गिराना था। ठीक ऐसी ही प्रक्रिया नब्बे के दशक में स्कूली संदर्भ में अपना कर उनका स्तर इतना गिराया गया कि उनको बेचा जा सके। अब विश्वविद्यालयों की बारी है।

विगत पांच सालों में हम समान शिक्षा व्यवस्था के संवैधानिक मकसद से इतना दूर चले गए हैं कि इसकी चर्चा तक करने की गुंजाइश खत्म हो गई है। इसीलिए तीसरे संस्करण में हमने सुनील की मूल पुस्तिका (खंड एक) पेश करने के बाद एक नया खंड दो जोड़ा है जिसमें राजनीतिक दलों के साथ 7 अप्रैल को भोपाल में आयोजित संवाद में सुनील द्वारा चार सवालों के दिए गए जवाबों को शामिल किया है। इन बेबाक जवाबों में सुनील ने नवउदारवादी नीतियों की चीर–फाड़ करके हालिया संकट का आकलन पेश किया है। आशा है कि खंड दो उनके असमय हुए निधन की कमी को कुछ हद तक पूरा करने में मददगार होगा। आखिरकार, बाकी रास्ता तो तय करने की ज़िम्मेदारी सामूहिक रूप से हम सब की है। यदि इतनी सी बात पर हम सोचने भर के लिए तैयार हो जाएं तो यही सुनील के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी!

– अनिल सद्‌गोपाल

अंतर्राष्ट्रीय मज़दूर दिवस (01 मई 2014)

खंड एक

मूल पुस्तिका

भारत शिक्षित कैसे बने?

(दूसरा संस्करण, नवंबर 2009)

"निजी स्कूल का मतलब ही भेदभाव है। जिसके पास पैसा है, उसका बच्चा ऊंचे स्कूल में पढ़ेगा। जिसके पास और पैसा है, उसका बच्चा विदेश पढ़ने जाएगा। जिसके पास पैसा नहीं है और जो सबसे ज़्यादा उपेक्षित, गरीब व मज़दूर का बच्चा है, वह सरकारी स्कूल में जाएगा। शिक्षा में भेदभाव, स्वास्थ्य में भेदभाव। बच्चे तो भगवान की देन हैं फिर आप उन बच्चों में भेदभाव क्यों कर रहे हैं। आपकी समान अवसर की बात सिर्फ़ एक ढकोसला है। शिक्षा में भेदभाव नहीं होना चाहिए।"

-- सुनील
राजनीतिक दलों के साथ शिक्षा नीति पर संवाद
भोपाल, 07 अप्रैल 2014

भूमिका

भारत का हर बच्चा और हर नागरिक शिक्षित हो – यह सपना है, जिसे आधुनिक भारत के निर्माताओं ने देखा था। महात्मा फुले, सावित्रीबाई फुले, राजा राममोहन राय, स्वामी विवेकानंद, स्वामी दयानंद सरस्वती, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, महात्मा गांधी, मदनमोहन मालवीय, अली बन्धु, डॉ. ज़ाकिर हुसैन, बाबा साहेब अंबेडकर, डॉ. राममनोहर लोहिया आदि आधुनिक भारत के सभी युगपुरुषों व युगमहिलाओं ने शिक्षा पर जोर दिया और इस दिशा में प्रयास किए। लेकिन अफसोस है कि यह सपना अभी तक पूरा नहीं हुआ और निकट भविष्य में भी पूरा होता दिखाई नहीं दे रहा है।

किसी भी देश के सारे नागरिकों का शिक्षित होना उस देश के विकास की पहली शर्त है। इस पर लगभग आम सहमति है। विचारधारा कोई भी हो – साम्यवादी, समाजवादी, गांधीवादी, उदारवादी – सब इस एक मुद्दे पर सहमत हैं (शिक्षा कैसी हो, इस पर अलग-अलग राय हो सकती है)। इसीलिए भारत के संविधान में दस वर्ष के अंदर देश के सारे बच्चों को शिक्षित करने का लक्ष्य रखा गया था। इसके बावजूद देश आजाद होने के 62 वर्ष बीत जाने पर भी यह लक्ष्य पूरा नहीं हो पाया। शायद सरकारों में बैठे लोग (भारत का शासक वर्ग) नहीं चाहते हैं कि देश के सारे बच्चे भलीभांति शिक्षित हों। विश्व बैंक जैसी अंतर्राष्ट्रीय ताकतों ने इसमें दखल देकर मामले को और जटिल बनाया है।

एक तरफ देश में शिक्षा का तेजी से निजीकरण हो रहा है एवं शिक्षा का बाजार बनता जा रहा है। दूसरी तरफ, सरकारी शिक्षा की हालत लगातार बिगड़ती जा रही है। यह महज संयोग है या इसके पीछे सरकार की सोची-समझी नीतियां और अंतर्राष्ट्रीय ताकतें भी हैं? शिक्षा में भेदभाव बढ़ेगा और शिक्षा महंगी होती जाएगी, तो देश के साधारण बच्चों के लिए शिक्षा में आगे बढ़ने के दरवाजे खुलेंगे या बंद होते जाएंगे? विकल्प क्या है? ऐसे कई सवाल सामने आते हैं। भारत सरकार के नए मानव संसाधन मंत्री श्री कपिल सिब्बल ने अपना 100 दिन का कार्यक्रम पेश करते वक्त शिक्षा अधिकार विधेयक के साथ-साथ शिक्षा में निजी पूंजी निवेश को बढ़ावा देने और विदेशी शिक्षण संस्थाओं को देश में अनुमति देने

की बातें भी कही हैं। क्या दोनों चीजें एक साथ चल सकती हैं? यह साफ है कि वे शिक्षा का मुक्त बाजार बनाना चाहते हैं।

संसद में हाल ही में पारित शिक्षा अधिकार कानून ('बच्चों के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा अधिकार कानून, 2009') ने एक भ्रम फैलाया है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि भारत सरकार देश के सारे साधारण बच्चों को शिक्षित करने के बारे में गंभीर है और उसने यह एक बड़ा कदम उठाया है। लेकिन बारीकी से पड़ताल करने पर मालूम होता है कि इस कानून में कई गंभीर गड़बड़ियां हैं। यह देश में शिक्षा के बढ़ते हुए निजीकरण और बाजारीकरण पर रोक नहीं लगाता है, बल्कि उसे वैधानिकता प्रदान करता है। यह देश की सरकारी शिक्षा व्यवस्था की बदहाली के कारणों को भी दूर नहीं करता है। देश में शिक्षा के बंटवारे व भेदभाव को मजबूत करता है। देश के साधारण गरीब बच्चों के नाम तो स्कूल में दर्ज होंगे लेकिन उन्हें मिलनेवाली शिक्षा नाममात्र की और घटिया रहेगी तथा वे कभी भी प्रतिस्पर्धा में बराबरी पर नहीं आ पाएंगे, यह इस कानून में सुनिश्चित कर दिया गया है। इस कानून को सरसरी तौर पर देखकर उसका समर्थन करने की गलती कुछ लोग कर रहे हैं। वे सोच रहे हैं कि इस कानून की कमियां बाद में दूर हो जाएंगी। लेकिन कानून की पूरी राजनीति और शासक वर्ग की मंशा को समझना जरूरी है। वे इस कानून की आड़ में बाजारवाद के अपने एजेंडे को आगे बढ़ा रहे हैं, यह कई तरीकों से साफ दिखाई दे रहा है।

शिक्षा अधिकार कानून के कुछ समर्थक कहते हैं कि आज की हालातों में इतना ही संभव है। किंतु इससे संतोष क्यों किया जाए? देश को आजादी मिलने के 62 साल बाद भी देश के सारे साधारण बच्चों को बराबरी की, स्तरीय शिक्षा का अधिकार मिलने के लिए और कितना इंतजार करना पड़ेगा? जो हालात सबको अच्छी शिक्षा की न्यूनतम व्यवस्था की भी इजाजत नहीं देती, वे हमें मंजूर क्यों हों? उन्हें बदलने के बारे में हम क्यों न सोचें?

देश के कुछ सुधीजनों और संगठनों ने इस विषय में देश को चेताने का बीड़ा उठाया है। उनका मानना है कि देश के सारे बच्चों को अच्छी तरह शिक्षित करना है तो शिक्षा के बाजारीकरण को रोकना होगा, शिक्षा में भेदभाव एवं

गैरबराबरी दूर करना होगा और देश में समान स्कूल प्रणाली की स्थापना करना होगा। इसके बगैर यह लक्ष्य हासिल नहीं हो सकता।

इसके बारे में एक मुहिम पूरे देश में चलाई जा रही है। इस मुहिम के दौरान अनेक तरह के सवाल एवं शंकाएं सामने आती रही हैं, जिनके समाधान के लिए यह पुस्तिका लिखी गई है। इसे सरल भाषा में आम लोगों से बातचीत की शैली में लिखा गया है। आशा है कि इससे शिक्षा के सवाल पर छाई धुंध को साफ करने और शिक्षा के बुनियादी अधिकार के लिए एक जनांदोलन खड़ा करने में मदद मिलेगी। पाठकों की मदद के लिए अंत में शिक्षा अधिकार विधेयक पर मुख्य आपत्तियों को तथा समान स्कूल प्रणाली की मुख्य बातों को बिन्दुवार दिया गया है। इसी के साथ कपिल सिब्बल की घोषणाओं की प्रतिक्रिया रूप में मेरा एक आलेख भी अंत में दिया गया है, जो कुछ संपादित रूप में 'जनसत्ता' में 16 जुलाई 2009 को प्रकाशित हुआ है।

शिक्षा कैसी हो, शिक्षण पद्धति कैसी हो, इन प्रश्नों पर इस पुस्तिका में ज्यादा विचार नहीं किया गया है, हालांकि बाद के तीन-चार सवालों में कुछ मोटी बातें कही गई हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि शिक्षा के ये पहलू महत्वपूर्ण नहीं है। सिर्फ स्थानाभाव के कारण ही उन पर ज्यादा लिखा नहीं गया है। किंतु संदर्भों में उनके बारे में पाठकों को काफी रोशनी मिलेगी।

इस पुस्तिका को तैयार करने में शिक्षाविद् डॉ. अनिल सद्गोपाल की प्रेरणा, मदद और उनके मार्गदर्शन की बड़ी भूमिका रही है। पुस्तिका में दी गई कई जानकारियां व दलीलें उनके लेखन एवं भाषणों से ली गई हैं।

पुस्तिका का पहला संस्करण अगस्त 2009 में प्रकाशित हुआ था। तीन महीने में वह संस्करण समाप्त हो गया और दूसरा संस्करण प्रकाशित हो रहा है। यह इस विषय में लोगों की गहरी रुचि का प्रमाण है।

यदि इस पुस्तिका को पढ़ने के बाद कुछ और सवाल होंगे या कोई टिप्पणी, प्रतिक्रिया अथवा कुछ करने की पहल होगी, तो उनका स्वागत है।

– सुनील

देश के सारे बच्चे शिक्षित कैसे हों?

सवाल – *मैं समझता हूं कि हमारे देश ने शिक्षा में बहुत प्रगति की है। गांव–गांव में स्कूल खुल गए हैं, 90 प्रतिशत बच्चे स्कूल जाने लगे हैं, साक्षरता का स्तर बहुत बढ़ गया है। उच्च शिक्षा में भी काफी प्रगति हुई है। कई नए विश्वविद्यालय, ढेर सारे इंजीनियरिंग कॉलेज, मुक्त विश्वविद्यालय आदि अब मौजूद हैं, जिससे आगे बढ़ने के कई अवसर खुल गए है। सूचना तकनालॉजी के मामले में तो हम नंबर एक पर पहुंच गए है। क्या इसे आप प्रगति नहीं मानते? या हर चीज का विरोध करना और नकारात्मक पहलू देखना आपकी आदत बन गई है?*

जवाब – मैं मानता हूं कि प्रगति हुई है, लेकिन यह प्रगति नाकाफी, खोखली और दिखावटी है। कुछ मायनों में तो अब हम उल्टे गिरावट की दिशा में जा रहे हैं। स्कूल तो गांव–गांव, बस्ती–बस्ती में खुल गए हैं, लेकिन उनमें पढ़ाई नहीं होती है। कई स्कूलों में एक ही शिक्षक है। जहां ज्यादा शिक्षक है, वहां भी एक या दो किसी न किसी कारण से गैरहाजिर रहते हैं। इनमें से ज्यादातर 'पैरा–शिक्षक' हैं, जो पूरी तरह से प्रशिक्षित व स्थायी नहीं है। स्कूलों में बच्चों की दर्ज संख्या कुछ हद तक दिखावटी और आंकड़े बढ़ाने के लिए हैं, वास्तव में उससे काफी कम बच्चे स्कूलों में मिलते हैं। फिर ये आंकड़े तो राष्ट्रीय औसत के हैं। देश के कई पिछड़े इलाकों में शिक्षा की हालत ज्यादा खराब है। गांवों में, लड़कियों में, दलितों में, आदिवासियों में अभी भी काफी बड़ी संख्या स्कूल नहीं जाती है। जो जाते हैं, उनमें भी काफी बच्चे बीच में ही स्कूल छोड़ देते हैं। स्कूल में पढ़ाई का स्तर भी बहुत खराब है।

हमें देश की प्रगति ऊपर पहुंचे चंद व्यक्तियों से नहीं, बहुसंख्यक जनता की हालत से नापना चाहिए। अभी भी हमारे देश के आधे से ज्यादा बच्चे 8वीं कक्षा पास नहीं कर पाते हैं। दुनिया में निरक्षरों की सबसे बड़ी संख्या भारत में ही है। क्या देश आजाद होने के 62 साल बाद भी यह हालत हमारे लिए शर्मनाक नहीं है? देश के बच्चों को न्यूनतम स्कूली शिक्षा देने की व्यवस्था भी न कर पाएं, तो क्या हम स्वयं को आधुनिक और प्रगतिशील राष्ट्र कहने का दावा कर सकते हैं?

सवाल - *आपकी नजर में इसके लिए कौन दोषी है? ऐसा लगता है कि सरकार तो भरसक कोशिश कर रही है, लेकिन लोग जागरुक नहीं हैं। वे अपने बच्चों को स्कूल नहीं भेजते, उनकी पढ़ाई पर ध्यान नहीं देते। यदि शिक्षक जिम्मेदारी से बच्चों को नहीं पढ़ा रहे हैं, या स्कूल से गायब रहते हैं तो इसका कारण हमारे समाज में नैतिक गिरावट है, जिसमें लोग अपना कर्तव्य पूरा नहीं करना चाहते। हर गलती को सरकार के मत्थे थोपना ठीक नहीं है।*

जवाब - मैं तो समझता हूं कि बात उल्टी है। इस समय शिक्षा के प्रति आम जनता में काफी जागरुकता है। गरीब से गरीब परिवार अपने बच्चों को पढ़ाना चाहते हैं। लेकिन वे पाते हैं कि निजी स्कूल उनकी पहुंच से बाहर हैं, और सरकारी स्कूल में उनके बच्चे कुछ सीख नहीं पाते हैं। वे आवारा और कुंठित ही बनते हैं। जहां तक शिक्षकों की बात है, हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि, (एक) उनकी संख्या जरूरत से काफी कम है, (दो) उन्हें शिक्षण के अलावा दूसरे बहुत सारे काम दे दिए जाते हैं (तीन) 'पैरा-शिक्षक' के रूप में उनका वेतन बहुत कम है और वे अस्थाई हैं, यानी उनकी नौकरी की कोई गारंटी नहीं है। सबसे बड़ा दोष सरकार का यह है कि उसने सैद्धांतिक तौर पर मान लिया है कि कई प्राथमिक शालाएं दो या तीन शिक्षकों की होंगी तथा एक शिक्षक एक साथ दो या तीन कक्षाओं को पढ़ा सकता है। इसके लिए ('बहु-कक्षा अध्यापन' के लिए) उन्हें प्रशिक्षण भी दिया जा रहा है। यह कैसे संभव है? एक शिक्षक एक साथ कई कक्षाओं को कैसे पढ़ा सकता है? क्या गरीब बच्चों के साथ शिक्षा के नाम पर यह एक क्रूर मजाक नहीं है? जितनी कक्षाएं हैं, कम से कम उतने शिक्षक क्यों नहीं नियुक्त किए जाते हैं?

पैरा-शिक्षक क्या हैं?

सवाल - *आप बार-बार 'पैरा-शिक्षक' शब्द इस्तेमाल कर रहे हैं। यह क्या है? क्या यह शिक्षक से अलग कोई चीज है?*

जवाब - जी हां, ऐसा ही समझ लीजिए। पैरा शिक्षक का मतलब समझिए अर्ध-शिक्षक। पिछले कुछ समय से हमारी राज्य सरकारों ने शिक्षामित्र, शिक्षाकर्मी, संविदा शिक्षक, गुरुजी, अतिथि शिक्षक, लोक शिक्षक, लोकमित्र, विद्या उपासक, विद्या वालंटियर आदि विभिन्न नामों से ऐसे शिक्षकों की नियुक्ति शुरू कर दी है, जो अस्थाई होते हैं, प्रशिक्षित नहीं होते हैं और जिन्हें बहुत कम वेतन दिया जाता है। पुराने किस्म के प्रशिक्षित और पर्याप्त वेतन वाले शिक्षकों की नियुक्ति बंद कर दी गई है तथा उनके खाली पदों पर पैरा-शिक्षकों की ही नियुक्ति की जा रही है। अब स्कूलों में आधे से ज्यादा शिक्षक इसी तरह के हैं। इनका वेतन बहुत कम है- एक हजार रुपए मासिक से लेकर पांच हजार रुपए मासिक तक। एक तरीके से सरकार ने इनकी नियुक्ति करके एक कंजूस बनिये की तरह पैसा बचाने का काम किया है। उसने शिक्षा के काम को ठेके और मजदूरी में बदल दिया है। 'अतिथि शिक्षक' की नियुक्ति तो दैनिक मजदूरी पर ही की जाती है- जितने दिन वह पढ़ाएगा (या पढ़ाएगी) उत . दिन की मजदूरी उसे मिलेगी। वह भी कई बार बहुत देर से मिलती है। कोर्स पूरा होने पर उनकी फरवरी में छुट्टी कर दी जाती है।

इतने कम वेतन और रोजगार की अनिश्चितता की हालत में यदि शिक्षक मन लगाकर ठीक से बच्चों को नहीं पढ़ा पाता है, तो उसको ज्यादा दोष नहीं दिया जा सकता। ऐसा लगता है कि सरकार ने गरीब बच्चों के लिए स्कूल खोलने की खानापूर्ति तो कर दी है, लेकिन वास्तव में उन्हें शिक्षित करने की कोई इच्छा एवं प्रतिबद्धता उसमें दिखाई नहीं देती।

कक्षावार शिक्षक और कक्ष,
हर शिक्षक हो कुशल व दक्ष !

सवाल - *यह आप कैसे कह सकते हैं? सरकार काफी जोर-शोर से 'सर्व शिक्षा अभियान' चला रही है और उसमें काफी पैसा भी खर्च कर रही है। इसके पहले जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डी.पी.ई.पी.) और साक्षरता अभियान भी चला है। कमियों के बावजूद आखिर उनसे हमें शिक्षा के क्षेत्र में आगे बढ़ने में मदद ही मिली है।*

जवाब - इन परियोजनाओं एवं कार्यक्रमों को उनके सीमित दायरे में देखेगें, तो उनकी कई उपलब्धियां नजर आएगीं और कमियों के बारे में लगेगा कि उन्हें दूर किया जा सकता है। लेकिन हमें इन्हें संपूर्णता में भारत की शिक्षा की पूरी तस्वीर के साथ देखना होगा। इन्हीं के साथ भारत में शिक्षा के निजीकरण और शिक्षा का बाजार बनाने का काम जोर-शोर से शुरू हुआ। देश के सारे बच्चों को शिक्षा देने की जिम्मेदारी से सरकार पीछे हटने लगी। सरकारी शिक्षा व्यवस्था को जानबूझकर उपेक्षित करने, बिगाड़ने और उसके मानदंड हल्के करने का काम भी इसके साथ ही हुआ। साक्षरता को स्कूली शिक्षा के विकल्प के रूप में भी पेश किया गया। पूरे शिक्षकों एवं सुविधाओं से युक्त व्यवस्थित शालाओं के स्थान पर एक-दो शिक्षक वाली 'शिक्षा गारंटी शाला' तथा प्रशिक्षित-स्थायी शिक्षकों के स्थान पर पैरा-शिक्षकों की बड़े पैमाने पर नियुक्ति भी इसी अवधि में हुई।

दरअसल इन परियोजनाओं के लिए विश्व बैंक व अन्य विदेशी संस्थाएं धन दे रही हैं। वे जिन देशों को मदद करती हैं, उनकी नीतियों को भी प्रभावित करती हैं और मदद के साथ अपनी शर्तें रखती हैं। मार्च,1990 में थाईलैंड के जोमतियन नगर में 'सबको शिक्षा' पर एक विश्व सम्मेलन हुआ, जिसे विश्व बैंक और संयुक्त राष्ट्र संघ ने आयोजित किया था। इस सम्मेलन में ही एक घोषणा भी जारी हुई, जिस पर भारत सरकार ने भी हस्ताक्षर किए। इसी के बाद भारत में शिक्षा के लक्ष्यों, मानदंडों और ढांचे को बदलने का काम शुरू हुआ।

सवाल - *क्या आप यह कहना चाहते हैं कि विश्व बैंक और अन्य अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं ने एक योजना या साजिश के तहत ये परिवर्तन करवाए? इसमें उनकी क्या रुचि हो सकती है?*

जवाब – विश्व बैंक पर दुनिया के बड़े अमीर देशों का वर्चस्व है। विश्व बैंक का अध्यक्ष हमेशा एक अमरीकी होता है। अमीर देशों और उनकी कंपनियों के स्वार्थों को आगे बढ़ाने के काम करने के लिए विश्व बैंक बहुत बदनाम है। निजीकरण और बाजारीकरण उसका प्रिय एजेंडा है। भारत के शिक्षा क्षेत्र में भी सरकारी शिक्षा व्यवस्था को कमजोर करके शिक्षा का बाजार बनाना और बढ़ाना उसका मकसद है।

हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि जोमतियन सम्मेलन ऐसे समय हुआ जब पूरी दुनिया में नवउदारवाद और वैश्वीकरण के वर्चस्व की शुरूआत हो रही थी। इस के एक वर्ष बाद ही सन् 1991 में भारत में नई आर्थिक नीतियों की शुरूआत हुई। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक का संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम यहां पर भी लागू हुआ, जिसमें वित्तीय घाटा कम करने के नाम पर शिक्षा सहित तमाम मदों पर खर्च में कटौती पर जोर दिया गया। विश्व बैंक एवं मुद्रा कोष द्वारा निर्देशित आर्थिक सुधारों से लोगों के जो कष्ट बढ़ेंगे, वे बगावत का रूप न ले लें, इसलिए कुछ राहत और सुरक्षा-जाल (सेफ्टी नेट) के उपाय भी विश्व बैंक सुझाता है। खानापूर्ति के लिए स्कूल खोल देना, उनमें पूरे एवं प्रशिक्षित शिक्षक न देना, साक्षरता अभियान आदि उसी प्रकार के ऊपरी, फौरी तथा भ्रम बनाए रखने वाले उपाय हैं। इनसे भारत के बच्चों को शिक्षा का बुनियादी अधिकार नहीं मिलता।

शिक्षा में क्या ऊंच क्या नीच,
शिक्षा ऐसी हो, जो रहे सभी के बीच।

बिन शिक्षक है अधूरी शिक्षा,
नहीं चाहिए ऐसी भिक्षा !

शिक्षा अधिकार कानून की खामियां

सवाल - *लेकिन भारत सरकार ने तो शिक्षा के अधिकार का कानून बनाया है। संसद में 'बच्चों के लिए मुफ़्त और अनिवार्य शिक्षा अधिकार विधेयक, 2009' पास किया गया है। यह कानून बन जाने से कोई भी नागरिक शिक्षा का अधिकार पाने के लिए अदालत की शरण ले सकेगा और सरकार को मजबूर कर सकेगा। दूसरी ओर आप कह रहे हैं कि सरकार शिक्षा का अधिकार नहीं देना चाहती। दोनों में विरोधाभास है। यह कुछ समझ में न आने वाली बात है।*

जवाब - ऐसे कई विरोधाभास आज मौजूद हैं। सरकार द्वारा बनाए गए कानून में कई खामियां हैं। भारतीय शिक्षा व्यवस्था में बढ़ती विषमता, भेदभाव और बाजारीकरण की प्रवृत्ति पर इसमें रोक नहीं लगाई गई है या फिर जो उपाय किए गए हैं, वे लचर और अप्रभावी हैं। सरकारी शिक्षा में दो कमरे-दो शिक्षक वाले स्कूल (यानी अपर्याप्त शिक्षक और एक शिक्षक द्वारा कई कक्षाओं को पढ़ाया जाना) तथा पैरा-शिक्षक की व्यवस्था को दूर करने के बजाय एक तरह से उस पर वैधता की मुहर लगाने का काम यह कानून करता है। सरकारी शिक्षकों को चुनाव, जनगणना जैसे कामों में लगाने पर कोई रोक इस विधेयक में नहीं है। नतीजा यह होगा कि यह कानून बन जाने के बाद भी देश के बहुसंख्यक गरीब बच्चों के लिए अधूरी, अधकचरी, घटिया और उपेक्षित शिक्षा व्यवस्था चालू रहेगी। दूसरी ओर अमीरों के बच्चे निजी स्कूलों में शिक्षा की बेहतर व्यवस्था में पढ़ते रहेंगे। अमीर-गरीब की खाई और बढ़ती जाएगी। शिक्षा की भूमिका देश के बच्चों में मेलजोल व सामंजस्य बढ़ाने की होनी चाहिए, किंतु वास्तव में इससे ठीक उल्टा हो रहा है।

सवाल - *लेकिन इस कानून में कई अच्छी बातें हैं। इसमें निजी स्कूलों में केपिटेशन शुल्क लेने पर तथा भर्ती के पहले बच्चों या अभिभावकों के साक्षात्कार व छंटाई पर रोक का प्रावधान है। निजी स्कूलों में 25 फीसदी सीटों पर गरीब बच्चों को मुफ़्त शिक्षा का भी प्रावधान इसमें है। क्या आप इनका भी विरोध करते हैं? भारत सरकार गरीबों की शिक्षा के लिए वाउचर जारी करने तथा शिक्षा में 'निजी-सरकारी सहभागिता' (पब्लिक-प्राईवेट पार्टनरशिप) की योजना भी बना रही है। उसके बारे में आपकी क्या राय है?*

जवाब – यदि मुनाफा कमाने वाले निजी स्कूलों को चलने दिया जाता है, तो वे इन प्रावधानों से बचने के तरीके निकाल लेंगे। जैसे केपिटेशन फीस बिना रसीद के लेंगे या ट्यूशन फीस बढ़ा देंगे। महंगे निजी स्कूलों में गरीब बच्चों की मात्र ट्यूशन फीस ही सरकार देगी। उनमें बाकी कई तरह के शुल्क और खर्च होते हैं, जिन्हें देना गरीब परिवारों के लिए मुश्किल होगा। यदि यह मान लिया जाए कि इन स्कूलों में 25 प्रतिशत सीटों पर गरीब परिवारों के बच्चे पढ़ सकेंगे, तो भी समस्या हल नहीं होने वाली है। वर्तमान में देश में स्कूल जाने की उम्र (6 से 14 आयु समूह) के करीब 19 करोड़ बच्चे हैं। लगभग 4 करोड़ बच्चे मान्यता प्राप्त निजी स्कूलों में हैं। इस आरक्षण से 25 फीसदी यानी एक करोड़ गरीब बच्चों को निजी स्कूलों में दाखिला मिलेगा। बाकी 15 करोड़ बच्चों का क्या होगा? वे घटिया, बिगड़ती, उपेक्षित, अधूरी, अधकचरी सरकारी शिक्षा को भोगने के लिए क्यों अभिशप्त रहें?

केंद्र सरकार ने 11वीं पंचवर्षीय योजना में 6000 मॉडल स्कूल खोलने का फैसला किया है, जिनमें 2500 स्कूल 'निजी-सरकारी सहभागिता' से खोले जाएंगे इनके लिए निजी एजेंसियों से निविदाएं बुलाई जाएंगी और सरकार उनको जमीन, भवन निर्माण एवं उपकरण आदि के लिए धन उपलब्ध कराएगी। खास तौर पर शहरों में सरकारी स्कूलों के पास काफी जमीन है, जो अब बहुत कीमती हो गई है। उस जमीन पर पूंजीपतियों की नजर है। सरकारी (जनता के) संसाधनों से निजी फर्मों द्वारा मुनाफे कमाने का यह एक और उदाहरण होगा। किंतु सवाल यह है कि इनमें कितने बच्चों को शिक्षा मिल पाएगी? देश के बाकी 12 लाख स्कूलों और करोड़ों बच्चों का क्या होगा? ये मॉडल स्कूल या निजी स्कूल देश के बच्चों की शिक्षा की बेहतर व्यवस्था का विकल्प नहीं हो सकते।

***सवाल** – आपकी बातों से ऐसा लग रहा है कि आप सरकार द्वारा अच्छे तरीके से चलाए जा रहे केंद्रीय विद्यालय, नवोदय विद्यालय, कस्तूरबा बालिका विद्यालय और नए मॉडल स्कूलों के भी खिलाफ हैं? क्यों? प्रतिभाशाली बच्चों को चुनकर सरकार अच्छी शिक्षा दे, इसमें क्या बुराई है?*

जवाब – केंद्रीय विद्यालयों, नवोदय विद्यालयों आदि से यह तो साबित होता है कि सरकार चाहे तो स्कूलों की व्यवस्था, शिक्षा एवं प्रशासन अच्छे से चला सकती है। लेकिन सवाल यह है कि यह बेहतर शिक्षा देश के सारे बच्चों को क्यों नहीं दी जा सकती? मुट्ठी भर बच्चों को (जो कुल बच्चों का एक प्रतिशत भी नहीं होंगे) चुनकर सरकार उनके लिए तो पूरे साधन जुटा देती है, लेकिन बाकी को भूल जाती है। हम यह क्यों माने कि कुछ बच्चों में प्रतिभा है, बाकी सब नालायक हैं? हर बच्चे में कुछ न कुछ प्रतिभा छिपी होती है। दोष उसका नहीं, हमारी व्यवस्था का है जो उसकी प्रतिभा को पहचानने में असफल रहती है और उसे खिलने एवं विकसित होने का अवसर नहीं देती है। जो भी हो, संपूर्ण सुविधायुक्त समग्र शिक्षा इस देश के हर बच्चे का हक है। केंद्रीय विद्यालय, नवोदय विद्यालय, कस्तूरबा बालिका विद्यालय, प्रस्तावित मॉडल स्कूल, उत्कृष्ट विद्यालय (जो इसी तर्ज पर राज्य सरकारों ने बनाए हैं) आदि बनाकर सरकार देश के सारे बच्चों के प्रति अपनी जिम्मेदारी से बरी होना चाहती है। देश का हर विद्यालय क्यों न नवोदय विद्यालय की तरह चलाया जाए? हर स्कूल क्यों न मॉडल स्कूल बने?

बहुपरती शिक्षा, भेदभाव की शिक्षा,
यह कानून नहीं, धोखा है !

शिक्षा कॉरपोरेट हब नहीं,
भारत की जनता का हक है !

समान स्कूल प्रणाली एकमात्र विकल्प

सवाल - *मैं आपकी बातों से बहुत चकरा गया हूं। आप कभी निजी स्कूलों की आलोचना करते हैं, कभी सरकारी स्कूलों को कोसते हैं। आखिर समाधान क्या है?*

जवाब - यदि देश के सारे बच्चों को अच्छी शिक्षा देना है, तो समान स्कूल प्रणाली के अलावा हमारे पास और कोई रास्ता नहीं है। इसका मतलब है कि सरकार देश के सारे बच्चों को सारी सुविधायुक्त शिक्षा की जिम्मेदारी लेगी। एक गांव या एक मोहल्ले के बच्चे एक ही स्कूल में पढ़ेंगे और इसके लिए कानून बनेगा। सेठ हो या मजदूर, कलेक्टर हो या चपरासी, व्यापारी हो या किसान - सबके बच्चे एक साथ पढ़ेंगे। उनमें कोई भेदभाव नहीं होगा। पैसे वालों को अपने बच्चे महंगे निजी स्कूलों में भेजने की इजाजत नहीं होगी। जब सारे बच्चे एक साथ पढ़ेंगे तो उन स्कूलों की हालत अपने-आप सुधरेगी।

जब पहले निजी स्कूल बहुत कम थे, तब बहुत हद तक ऐसी ही स्थिति थी। बड़े, प्रतिभाशाली एवं संपन्न लोगों के बच्चे ज्यादातर सरकारी स्कूलों में ही पढ़ते थे। तब इन स्कूलों पर सबकी नजर रहती थी। किंतु अब सरकारी स्कूलों में सिर्फ एकदम गरीबों के बच्चे ही जाते हैं। इसलिए वहां क्या हो रहा है, समाज के प्रभावशाली लोगों को इसका पता ही नहीं चल पाता है और न उनको कोई परवाह रहती है। इससे ये स्कूल और ज्यादा उपेक्षित, वंचित और बुरी हालत में हो गए हैं।

साठ के दशक में भारत सरकार द्वारा शिक्षा के बारे में बनाए गए कोठारी आयोग ने भी ऐसी ही सिफारिश की थी। इस आयोग ने इसे 'पड़ोसी स्कूल प्रणाली' कहा था, जिसमें सारे बच्चे अनिवार्य रूप से अपने पड़ोस के ही स्कूल में पढ़ने जाएंगे।

सवाल - *एक मिनिट रुकिए! जहां तक मुझे याद है, भारत सरकार के शिक्षा अधिकार कानून में भी पड़ोस के स्कूल में शिक्षा के अधिकार की बात है। क्या वह यही चीज नहीं है?*

जवाब - जी नहीं! इस कानून की धारा 3 (1) में प्रत्येक बच्चे को पड़ोस के या आसपास के विद्यालय में नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के अधिकार की जो बात है, उसमें बच्चे के पड़ोस की बात कही गई है, न कि स्कूल के पड़ोस की। इसमें निजी और विशिष्ट स्कूलों को अपने पड़ोस के सारे बच्चों को शिक्षा देने की जिम्मेदारी से बरी कर दिया गया है। उन्हें मात्र अपनी संस्था के 25 प्रतिशत तक गरीब बच्चों को प्रवेश देना है। बाकी गरीब बच्चे सरकारी स्कूलों में जाएंगे। इससे शिक्षा में भेदभाव और गैर-बराबरी कायम रहेगी तथा सरकारी स्कूल उपेक्षित व पतनशील रह जाएंगे।

इसके विपरीत, समान स्कूल प्रणाली में हर स्कूल का एक भौगोलिक दायरा या क्षेत्र होगा, जिसके अंदर के सारे बच्चों को शिक्षित करना उसकी जिम्मेदारी होगी। उस क्षेत्र में दूसरा स्कूल नहीं होगा। इस जिम्मेदारी को निभाने के लिए जरूरी संसाधन सरकार उपलब्ध कराएगी।

सवाल - *इस समान स्कूल प्रणाली में निजी स्कूलों की कोई जगह होगी या नहीं? देश की कई निजी शिक्षण संस्थाओं ने शिक्षा के क्षेत्र में अच्छा काम किया है। क्या उनको बंद करना पड़ेगा?*

जवाब - जो निजी स्कूल फीस लेते हैं, वे इस व्यवस्था में नहीं चल सकते, क्योंकि फीस लेने का मतलब है उस क्षेत्र के गरीब बच्चे उस स्कूल में नहीं पढ़ पाएंगे। लेकिन कुछ निजी शिक्षण संस्थाएं जो मुनाफे से प्रेरित नहीं हैं और परोपकार के उद्देश्य से चलती हैं, बच्चों से किसी प्रकार की फीस नहीं लेती हैं तथा उन्हें सारी जरूरी सुविधाएं उपलब्ध कराती हैं, वे इस प्रणाली का हिस्सा हो सकती हैं। फीस के बजाय वे सामाजिक दान से अपने खर्च जुटा सकती हैं और सरकार भी ऐसी संस्थाओं को अनुदान दे सकती है। किंतु इन निजी शिक्षण संस्थाओं को भी सरकार द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम पढ़ाना होगा, और सरकार के द्वारा तय मानदंडों (शिक्षक-छात्र अनुपात, भवन, प्रयोगशालाएं, पुस्तकालय, खेल सामग्री, अन्य सुविधाएं) पर खरा उतरना होगा।

लेकिन आज कमाई करने के लिए कुकुरमुत्ते की तरह उग आई शिक्षा की निजी दुकानों की इस व्यवस्था में कोई जगह नहीं होगी, यह तय है। निजी स्कूलों

में भी कई समस्याएं हैं। वे मनमानी फीस एवं अन्य शुल्क वसूलते हैं और चाहे जब बढ़ा देते हैं। शिक्षकों को भी बहुत कम वेतन देकर उनका शोषण करते हैं। इन स्कूलों की पढ़ाई भी अक्सर काफी घटिया और अधकचरी होती है। छोटे-छोटे कस्बों के अनेक स्कूल 'इंग्लिश मीडियम' का बोर्ड लगाकर लोगों को बेवकूफ भी बनाते हैं। आप यह समझ लें कि भारत जैसे विशाल देश में यदि सारे बच्चों को शिक्षा देना है (पैसे वालों के बच्चों और 'प्रतिभाशाली' गरीब बच्चों को शिक्षा देकर बाकी के प्रति बेपरवाह नहीं बनना है) तो उनकी समुचित शिक्षा की व्यवस्था की जिम्मेदारी मोटे तौर पर सरकार को ही लेना होगा। इस गरीब देश में निजी संसाधनों से यह काम नहीं हो सकता। इसके लिए मुफ्त, बिना भेदभाव की शिक्षा का ढांचा सार्वजनिक संसाधनों से बनाना ही पड़ेगा। जहां फीस लगाई, वहां गरीब वंचित हो जाएंगे। जहां भेदभाव और अलग-अलग शिक्षा की गुंजाइश बनी, वहां साधारण गरीब बच्चों की शिक्षा उपेक्षित, वंचित और कम स्तरीय हो जाएगी।

समतामूलक शिक्षा और ज्ञान,
अच्छे स्कूल की है पहचान।

राष्ट्रपति की हो या चपरासी की संतान,
सबको शिक्षा एक समान।

निजी बनाम सरकारी प्रबंध

सवाल – *आपकी बात तो मुझे समझ में आ रही है, लेकिन कुछ शंकाएं हैं। एक तो यह कि आम तौर पर देखने में आता है कि निजी क्षेत्र ज्यादा कुशल होता है। उसका प्रबंधन व प्रशासन बेहतर होता है। जिन सरकारी शिक्षकों को दस हजार रुपए मासिक वेतन मिलता है, वे ठीक से नहीं पढ़ाते हैं, जबकि निजी स्कूलों में एक हजार रुपए पाने वाले शिक्षकों की पढ़ाई बेहतर होती है। आपका क्या कहना है?*

जवाब – दरअसल बहुत कुछ सरकार की इच्छाशक्ति पर निर्भर करता है। पिछले कुछ वर्षों में सरकार ने जानबूझकर हर क्षेत्र में सरकारी व्यवस्थाएं बिगाड़ी हैं और निजीकरण एवं बाजारीकरण को बढ़ावा दिया है। नहीं तो आज से बीस साल पहले तक सरकारी शिक्षा की हालत इतनी खराब नहीं थी। फिर, जैसा कि ऊपर उदाहरण दिया गया है कि वही सरकार केंद्रीय विद्यालयों और नवोदय विद्यालयों को अच्छे से चला रही है। वास्तव में, आम बच्चों को अच्छी शिक्षा देने की इच्छा शक्ति और प्रतिबद्धता हमारी सरकारों में दिखाई नहीं देती।

सवाल – *किंतु सरकारी व्यवस्था में केंद्रीकरण, नौकरशाही, लालफीताशाही, जड़ता, भ्रष्टाचार, कामचोरी, स्तरहीनता, अकुशलता आदि बुराईयां व्याप्त रहती हैं। साथ ही, इसमें नीचे के स्तर पर किसी तरह के प्रयोगों, नवाचारों और विविधता की भी गुंजाइश नहीं रह जाएगी। क्या इससे हमारे जीवन पर सरकारी नियंत्रण भी नहीं बढ़ेगा?*

जवाब – देखिए, शिक्षा की व्यवस्था सार्वजनिक संसाधनों से हो और इसकी जिम्मेदारी सरकार ले – इसका मतलब यह नहीं है कि पूरी व्यवस्था केंद्रीकृत ढंग से केंद्र या राज्य सरकारें ही चलाएंगी और वे ही सब कुछ तय करेंगी। आज ऐसा ही हो रहा है। सरकार का मतलब ग्राम पंचायतें, नगरपालिकाएं और जिला सरकारें भी हो सकती हैं। वास्तव में हमें अधिकतम विकेंद्रीकरण करना होगा और कुछ मामलों में स्वायत्तता देना होगा।

मोटे तौर पर इसका ढांचा ऐसा हो सकता है। शिक्षा नीति के मोटे सिद्धांत और दिशा निर्देश राष्ट्रीय स्तर पर तय होंगे, जो हमारे संविधान में उल्लिखित

लोकतांत्रिक, समाजवादी, न्यायपूर्ण, धर्मनिरपेक्ष, प्रबुद्ध भारत के निर्माण के लक्ष्य के अनुकूल होंगे। पाठ्यक्रम की रूपरेखा व मार्गदर्शिका भी राष्ट्रीय और प्रांतीय स्तर पर तय हो सकती है। किंतु इसके भीतर, स्थानीय, भौगोलिक, सामाजिक, भाषाई व सांस्कृतिक परिस्थितियों के अनुरूप पाठ्यचर्या और शिक्षण पद्धति में विविधता एवं सृजनात्मक प्रयोगों की काफी गुंजाइश रहेगी। शिक्षकों की नियुक्तियां, पद-स्थापनाएं, तबादले और उनका प्रशासन जिले पर निर्वाचित सरकार के हाथ में रहना चाहिए (वर्तमान में हमारे देश में जिला स्तर पर निर्वाचित सरकारें नहीं है, किंतु सत्ता के सही मायने में विकेंद्रीकरण के लिए इनकी बहुत जरूरत है)। स्कूल स्तर का प्रशासन ग्राम सभाओं, ग्राम पंचायतों/नगरपालिकाओं, पालक-शिक्षक समितियों द्वारा मिलजुलकर किया जाना चाहिए। इनमें फिर ऊपर की नौकरशाही की दखलंदाजी कम-से-कम होना चाहिए। यदि ऐसा हो सका, तो हमारे स्कूलों का प्रबंध व प्रशासन काफी बेहतर हो सकता है।

यह भी समझ लें कि समान स्कूल प्रणाली का मतलब एकरूपता नहीं है। इसमें विविधता और कुछ मामलों में स्वायत्तता की गुंजाइश तो होगी, लेकिन भेदभाव एवं गैर-बराबरी की नहीं।

इसी तरह सरकारी संसाधन और सरकारी नियंत्रण एक ही चीज नहीं है। ऐसी व्यवस्थाएं बनाई जा सकती हैं, जिनमें सरकारें शिक्षा के लिए जरूरी धनराशि उपलब्ध कराने के लिए तो मजबूर हों, किंतु शिक्षण संस्थाओं की स्वायत्तता, विकेंद्रीकरण और उनमें जनभागीदारी बनी रहे।

निजी हाथों में शिक्षा बेचारी, कहां है सरकार की जिम्मेदारी ?

अव्यवहारिक? लोकतंत्र विरोधी?

सवाल - *आप जो कह रहे हैं, वह अच्छा तो लग रहा है, किंतु व्यवहारिक और संभव नहीं लग रहा है। ऐसा लगता है कि आप ख्याली पुलाव पका रहे हैं। लोग इसको स्वीकार नहीं करेंगे, बल्कि विरोध करेंगे। अपने बच्चों को मनचाहे स्कूल में पढ़ाने की आजादी को आप एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में कैसे छीन सकते हैं? एक तानाशाही कम्युनिस्ट व्यवस्था आने पर ही यह प्रणाली लागू हो पाएगी। यह भी बताइए कि दुनिया के किसी देश में ऐसा हुआ है क्या?*

जवाब - हर अच्छी चीज का विरोध तो होता ही है। जिनके स्वार्थ और विशेषाधिकार प्रभावित होते हैं, उनकी ओर से विरोध होना स्वाभाविक है। लेकिन इस प्रणाली में देश के ज्यादातर लोगों को फायदा है, पूरे देश को शिक्षित करने एवं आगे बढ़ाने का इसके अलावा कोई विकल्प नहीं है, यह समझ में आने पर विरोध काफी कम हो जाएगा।

जहां जनहित और पूरे देश के भविष्य का सवाल है, वहां कुछ नियम-कानून तो बनाने ही पड़ेंगे। व्यक्तिगत स्वतंत्रता की हमेशा एक सीमा होती है और जनहित में उन पर कुछ बंदिशें भी लगाना पड़ता है। आखिर हमने सड़क पर चलने के भी नियम बनाए हैं और किसी भी नागरिक को मनचाहे ढंग से सड़क पर चलने की आजादी नहीं दी जा सकती। पर्यावरण संरक्षण के भी कानून बनाए हैं तथा प्रदूषण फैलाने की आजादी पर अंकुश लगाए हैं। जरा यह भी सोचिए कि बच्चों की शिक्षा के मामले में वर्ग, जाति, लिंग के आधार पर भेदभाव (अलग-अलग स्कूलों) की इजाजत देकर क्या हम एक गंभीर अपराध नहीं कर रहे हैं और भारत राष्ट्र की कल्पना पर ही कुठाराघात तो नहीं कर रहे हैं? इन बच्चों के आपस में मेलजोल और सहशिक्षा की संभावनाएं खत्म करके क्या देश की एकता को मजबूत करने के अवसर नहीं खो रहे हैं?

फिर जिसे आप मनचाहा स्कूल चुनने की आजादी कह रहे हैं, वह तो थोड़े से पैसे वालों के लिए ही है। बहुसंख्यक गरीब लोग तो अपने बच्चों को सरकारी या घटिया सस्ते निजी स्कूल में भेजने को मजबूर हैं। उनके लिए चुनने की स्वतंत्रता कहां है?

मैं आपको यह भी बता दूं कि अमरीका-यूरोप के अनेक देशों में बहुत हद तक समान स्कूल प्रणाली ही चल रही है। जी-8 में शामिल दुनिया के सबसे ताकतवर और विकसित आठ मुल्कों (संयुक्त राज्य अमरीका, ब्रिटेन, कनाडा, जापान, फ्रांस, जर्मनी, रूस व इटली) में से ब्रिटेन को छोड़कर अन्य सभी में सरकारी धन पर चलने वाली उम्दा गुणवत्ता की मजबूत सार्वजनिक स्कूल प्रणाली है। ब्रिटेन में भी पिछले 40 सालों में जनदबाव के कारण सार्वजनिक स्कूल प्रणाली मजबूत हुई है। अमरीका में तो डेढ़ सौ सालों से सार्वजनिक स्कूल प्रणाली है, जहां अमीर-गरीब और विभिन्न नस्लों, मजहबों व भाषाओं के बच्चे एक साथ पढ़ते हैं। वहां निजी स्कूल तो नाममात्र के हैं। बिना समान स्कूल प्रणाली अपनाए दुनिया का कोई भी देश आगे नहीं बढ़ सकता है। जितना निजीकरण आज भारत में हो रहा है, उतना दुनिया के किसी भी संपन्न विकसित देश में नहीं हुआ है।

यदि दुनिया के बड़े पूंजीवादी देशों में काफी हद तक समान स्कूल प्रणाली लागू हो सकती है, तो भारत में क्यों नहीं हो सकती है?

भारत का संविधान और शिक्षा

***सवाल** - लेकिन क्या यह संविधान सम्मत होगा?*

जवाब - आपने संविधान की अच्छी याद दिलाई। हमारे संविधान निर्माता देश के सारे बच्चों को शिक्षा देना बहुत जरूरी मानते थे। संविधान सभा के अध्यक्ष बाबा साहेब अंबेडकर भी शिक्षा पर बहुत जोर देते थे। हमारे संविधान के नीति निर्देशक तत्वों में यह लक्ष्य रखा गया था कि -

> *"सरकार देश के सारे बच्चों के लिए 14 वर्ष की उम्र तक मुफ़्त और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था दस वर्ष के अंदर करने का उद्यम करेगी।"*

अफसोस की बात यह है कि जो काम दस वर्ष के अंदर हो जाना चाहिए था, वह 60 सालों में भी नहीं हो पाया है। आजाद भारत की सरकारों की यह बहुत बड़ी और अक्षम्य चूक है। ये सरकारें अपनी संवैधानिक जवाबदारी को पूरा करने में बुरी तरह असफल रही हैं। भारत राष्ट्र और भारतीय अवाम के प्रति उनका यह काफी बड़ा विश्वासघात है।

दरअसल सरकारों में ऊपर जो लोग बैठे हैं, उनके बच्चे तो महंगे निजी अंग्रेजी स्कूलों में पढ़ते हैं, इसलिए उन्होंने देश के सारे बच्चों को शिक्षा देने के लिए सरकारी शिक्षा तंत्र को फैलाने और मजबूत करने पर कभी गंभीरता से ध्यान ही नहीं दिया। भारत का शासक वर्ग मुख्य रूप से अमीर, उच्च जाति का, अंग्रेजी शिक्षित और पुरुषवादी है। उसे कहीं-न-कहीं यह डर भी रहा होगा कि यदि सबको शिक्षा मिलने लगी तो उनके बच्चों के लिए प्रतिस्पर्धा बढ़ जाएगी और उनके विशेषाधिकार खतरे में पड़ जाएंगे।

यदि देश के सारे बच्चों को अच्छी शिक्षा मिलने लगे, तो यह अपने आप में काफी क्रांतिकारी और परिवर्तनकारी काम होगा। इससे गरीबों, गांव के लोगों, पिछड़ी जातियों, दलितों, आदिवासियों व लड़कियों में काफी आत्मविश्वास आएगा और बराबरी की भूख जगेगी। अभी तक का अनुभव यह बताता है कि समान स्कूल प्रणाली अपनाए बगैर यह लक्ष्य हासिल नहीं हो सकता। यह भी सरकार स्वेच्छा से नहीं करेगी। एक देशव्यापी अभियान छेड़कर सरकार को इसके लिए मजबूर करना होगा।

सवाल - *लेकिन भारत सरकार ने शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाने के लिए संविधान में 86वां संविधान संशोधन तो किया है। वह क्या है?*

जवाब - दिसंबर 2002 में प्रारंभिक शिक्षा को नागरिकों का मौलिक अधिकार बनाने के लिए भारतीय संविधान में 86वां संशोधन पारित किया गया है। किन्तु सरकार ने इसमें दो प्रकार की चतुराई की है। एक तो यह मौलिक अधिकार कक्षा 1 से 8 तक सीमित कर दिया है, जबकि नीति-निर्देशक तत्वों में 14 वर्ष की उम्र तक की शिक्षा का प्रावधान था। यानी कि पूर्व प्राथमिक (कक्षा 1 से पहले की) शिक्षा की जबाबदारी से सरकार ने पल्ला झाड़ लिया है। इसी तरह कक्षा 9 से 12 तक की शिक्षा को भी मौलिक अधिकार में शामिल करने की जरूरत थी। मात्र कक्षा 8 तक की शिक्षा हासिल करके बच्चे इस दुनिया में आगे बढ़ने लायक नहीं हो पाएंगे। दूसरी चतुराई यह की है कि 1 से 8 कक्षा तक की मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा भी 'उस रीति से दी जाएगी जिसका निर्धारण सरकार कानून बनाकर करेगी।' यानी उस शिक्षा को सुनिश्चित करने का तरीका सरकारों पर छोड़ दिया गया है।

इसी रीति को ही तय करने का काम नए शिक्षा अधिकार कानून में किया गया है, जिसमें स्कूलों की कई श्रेणियों एवं गैरबराबरी के साथ शिक्षा के बाजारीकरण की भी इजाजत दी गई है।

वास्तव में, इस संविधान संशोधन के पहले सन् 1993 में सर्वोच्च न्यायालय ने उन्नीकृष्णन मामले में एक फैसला दिया था, जिसमें शिक्षा के विषय में संविधान के नीति-निर्देशक तत्व को संविधान के ही अनुच्छेद 21 में वर्णित जीवन के अधिकार के साथ जोड़कर देखा गया। ज्ञान व शिक्षा के बगैर जीवन का अधिकार निरर्थक है, यह सर्वोच्च न्यायालय ने माना। इस प्रकार 1993 के फैसले ने ही 14 वर्ष की उम्र तक के बच्चों को मुफ्त व अनिवार्य शिक्षा को मौलिक अधिकार का दर्जा दे दिया था।

ऐसा प्रतीत होता है कि उन्नीकृष्णन फैसले के प्रभाव एवं उससे निकली जिम्मेदारी को कम करने के लिए ही भारत सरकार ने 86वां संविधान संशोधन पारित किया और अब 'शिक्षा अधिकार कानून' संसद में पास किया है।

संविधान का है पैगाम,
सबको शिक्षा मिले समान।

शिक्षा है मौलिक अधिकार,
बंद करो इसका व्यापार।

स्कूल जरूरी हैं या हवाई जहाज?

सवाल – *एक बड़ा सवाल रह जाता है। आप जैसी व्यवस्था बता रहे हैं, उसमें तो विशाल धनराशि की जरूरत होगी। इतना पैसा कहां से आएगा? हमारा देश एक गरीब देश है। हमारी सरकारों की आमदनी भी सीमित है। अमीर देशों की बात अलग है। उनके पास पैसे की कोई कमी नहीं है।*

जवाब – यदि हम शिक्षा को जरूरी मानते हैं, उसे प्राथमिकता देते हैं, तो धनराशि कोई बड़ी समस्या नहीं है। कोठारी आयोग ने यह सुझाया था कि सरकार कुल राष्ट्रीय आय के 6 प्रतिशत के बराबर राशि शिक्षा पर खर्च करे। लेकिन यह आज तक नहीं हो पाया। वर्ष 2000-01 में केंद्र व राज्य सरकारों का शिक्षा खर्च कुल राष्ट्रीय आय का 3.19 प्रतिशत था। यह बढ़ने के बजाय 2007-08 में घटकर 2.84 प्रतिशत रह गया है।

दुनिया के स्तर पर देखें, तो स्वीडन अपनी राष्ट्रीय आय का 9 प्रतिशत, नीदरलैंड 7.7 प्रतिशत, अमरीका 6.7 प्रतिशत, नार्वे 6.5 प्रतिशत, मलेशिया 6 प्रतिशत, जापान 5.8 प्रतिशत, ब्रिटेन 5.6 प्रतिशत, आस्ट्रेलिया 5.5 प्रतिशत और फ्रांस 5 प्रतिशत खर्च करता है। भारत बहुत पीछे है। दुनिया में अपनी राष्ट्रीय आय में से शिक्षा पर खर्च करने वाले देशों में भारत का नंबर 115 वां है। यह शर्मनाक है। भारत को दुनिया की आर्थिक महाशक्ति बनाने का दावा करने वाली भारत सरकार इस मामले में होड़ और बराबरी क्यों नहीं करती? अनपढ़, अशिक्षित, अज्ञानी नागरिकों का देश कैसे महाशक्ति बनेगा?

हमारी सरकारें सेना व हथियारों पर बहुत खर्च कर रही हैं। हवाई जहाजों, हवाई अड्डों, फ्लाई ओवरों, पांच सितारा होटलों पर भी बहुत खर्च करती हैं। वर्ष 2010 में दिल्ली में होने वाले राष्ट्रमंडल खेलों पर वह कुल मिलाकर 80,000 करोड़ रुपए खर्च करने वाली है। तब देश के बच्चों की स्कूली शिक्षा पर जरूरी खर्च क्यों नहीं किया जा सकता है?

स्कूली शिक्षा बनाम उच्च शिक्षा

सवाल – *आप जो समान स्कूल प्रणाली और मुफ़्त-अनिवार्य शिक्षा की बात कर रहे हैं, वह किस कक्षा तक दी जाएगी? क्या उच्च शिक्षा पर भी वह लागू होगी? यह भी स्पष्ट कीजिए कि यदि हमारे पास संसाधनों की कमी है, तो क्या हमें उच्च शिक्षा और स्कूली शिक्षा के बीच एक को चुनना होगा? कुछ लोगों का मानना है कि भारत जैसे गरीब देश के लिए उच्च शिक्षा एक विलासिता है। आपकी क्या राय है?*

जवाब – यद्यपि हमारे संविधान में 14 वर्ष की उम्र तक, यानी कक्षा 8 तक के बच्चों के लिए मुफ़्त और अनिवार्य शिक्षा का निर्देश दिया गया था, लेकिन वह 60 साल पुरानी बात हो गई है। प्रारंभिक दस वर्षों के लिए वह लक्ष्य रखा गया था। अब तो हमें कक्षा 12 तक सारे बच्चों के लिए समान स्कूल प्रणाली पर आधारित समुचित शिक्षा की व्यवस्था जल्दी से जल्दी करना ही होगा। इससे कम हम सोच भी नहीं सकते।

संवैधानिक निर्देश का एक और मतलब है, जिसकी ओर आम तौर पर ध्यान नहीं दिया जाता। इसमें 14 वर्ष तक की उम्र के बच्चों की शिक्षा की बात कही गई है, और उम्र की कोई निचली सीमा नहीं बताई है। यानी कक्षा 1 से पहले, जिसे आजकल के.जी., नर्सरी या पूर्व प्राथमिक शिक्षा कहा जाता है, तथा स्कूल से पहले आंगनवाड़ियों-बालवाड़ियों की समुचित शिक्षा की व्यवस्था करना भी सरकार की जवाबदेही है। देश के बहुत सारे बच्चे इससे वंचित रहते हैं। यह इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि वैज्ञानिकों का मानना है कि बच्चों के मस्तिष्क का ज्यादातर विकास इसी उम्र में होता है। इसलिए 6 वर्ष से कम उम्र के बच्चों के समुचित पोषण, स्वास्थ्य और पूर्व-प्राथमिक शिक्षा को सुनिश्चित करना भी सरकार की जवाबदेही है।

यह सही है कि उच्च शिक्षा की प्राथमिकता दूसरी है और हमें सबसे पहले देश के हर बच्चे को कक्षा 12 तक की शिक्षा मिले, इसे सुनिश्चित करना होगा। सारे बच्चों को उच्च शिक्षा में जाने की जरूरत भी नहीं है। कक्षा 12 तक की शिक्षा पूरी करके वे समाज की विभिन्न गतिविधियों (जैसे खेती, पशुपालन, मैकेनिक,

खेल, संगीत, कला, विभिन्न प्रकार के शिल्प और उद्योग) आदि में जा सकते हैं और उनके लिए आवश्यक प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए जा सकते हैं। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि उच्च शिक्षा की कोई जरूरत नहीं है। वह भी महत्वपूर्ण है और उसमें भी सरकार को ही महत्वपूर्ण भूमिका निभानी पड़ेगी। यदि यह शिक्षा निजी हाथों में रही (जैसा कि तेजी से हो रहा है) तो काफी महंगी होती जाएगी और देश के 90 प्रतिशत बच्चे इससे वंचित होते जाएंगे। देश में गैर-बराबरी को बनाए रखने और बढ़ाने का यह बहुत बड़ा जरिया बना रहेगा।

यह जरूर है कि उच्च शिक्षा की प्रकृति, पाठ्यक्रम और चरित्र में काफी बड़े बदलाव करने होंगे। आज हमारी उच्च शिक्षा काफी हद तक पश्चिमी देशों की नकल पर आधारित है और बहुत हद तक देश की परिस्थितियों व जरूरतों से कटी हुई है। इसे ज्यादा प्रासंगिक व ज्यादा जमीनी बनाने की जरुरत है। हमारे शास्त्रों को भी नए सिरे से लिखने की जरूरत है। यह भी सही है कि इसी तरह के बदलाव स्कूली शिक्षा की विषयवस्तु व पद्धति में भी करने की जरूरत है।

ट्यूशन-कोचिंग का बाजार

सवाल *- देश में ट्यूशन और कोचिंग का बहुत बड़ा बाजार बन गया है। एक-एक कोचिंग संस्थान की सालाना कमाई करोड़ों रुपए में पहुंच रही है। इस पर आपका क्या कहना है?*

जवाब - यह तो बहुत चिंताजनक है। खास तौरपर प्रतिस्पर्धी परीक्षाओं (आईएएस, आईआईटी आदि) के कोचिंग संस्थान तो राष्ट्रीय अखबारों में पूरे-पूरे पृष्ठ के विज्ञापन देते हैं। इतनी मात्रा में इतने बड़े विज्ञापन सिर्फ कारें, मोटर-साईकिल बनाने वाली वाहन कंपनियां या मोबाईल फोन वाली कंपनियां ही दे पाती हैं। आज कोचिंग देश के सबसे ज्यादा मुनाफा कमाने वाले व सबसे तेजी से बढ़ते हुए उद्योगों में से एक हो गया है।

लेकिन यह कोई गर्व या खुशी की बात नहीं है। न ही प्रगति का लक्षण है। यह सारा पैसा विद्यार्थियों-युवाओं के पालकों की जेब से निकल रहा है। यह लूट है। बहुसंख्यक युवाओं के लिए इन प्रतिस्पर्धाओं के दरवाजे बंद हो रहे हैं या

प्रतिस्पर्धा ज्यादा गैर-बराबर हो रही है, क्योंकि उनके परिवार के पास कोचिंग के लिए लाखों रुपया नहीं है।

यह जो गलाकाट प्रतिस्पर्धा का भयंकर माहौल है, यह भी काफी अस्वस्थ और दमघोंटू है। भारत के बच्चों और युवाओं की बहुत सारी उम्र और ऊर्जा इनके लिए रट्टा लगाने में बरबाद होती है। लाखों बच्चे असफल होते हैं तथा कुंठित व हीन भावना के शिकार होते हैं।

दरअसल कक्षा 12 की परीक्षा में प्राप्त अंकों को ही उच्च शिक्षा में प्रवेश के लिए आधार बनाना चाहिए तथा इनके लिए अलग से परीक्षाएं लेने की जरूरत नहीं होनी चाहिए। इसके लिए उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम और परीक्षा प्रणाली में कोई जरूरी सुधार लगे तो किए जा सकते हैं। तब कोचिंग की जरूरत ही खत्म हो जाएगी और कोचिंग संस्थानों पर प्रतिबंध लगाया जा सकेगा।

शिक्षण पद्धति में सुधार

सवाल - *इसके पहले वाले जबाब में आपने शिक्षा की प्रकृति, विषयवस्तु और पद्धति में बदलाव की बात कही। यह अच्छा हुआ कि आपने यह बात छेड़ी, नहीं तो इसके पहले तो आपकी बातों से ऐसा लग रहा था मानो वर्तमान शिक्षा पद्धति से आपको कोई शिकायत नहीं है। बस समान स्कूल प्रणाली लागू कर दो, खर्च बढ़ा दो, सारी सुविधाएं दे दो, तो सब कुछ ठीक हो जाएगा। लेकिन बहुत लोगों का मानना है कि यह शिक्षा तोतारटंत, उबाऊ, अनुपयुक्त और कुंद करने वाली है। बस्ते के बढ़ते बोझ पर भी बहुत से लोगों ने चिंता जाहिर की है। स्कूल में बच्चों की पिटाई और यातनाएं भी एक बड़ा मुद्दा है। समाज की जरूरतों से इस शिक्षा का बहुत रिश्ता नहीं हैं। यह बाबू, नौकर व गुलाम तैयार करने वाली मैकाले की शिक्षा पद्धति का ही विस्तार है। इस विषय में आपका क्या कहना है?*

जवाब - आपने ठीक कहा। शिक्षा का काम बच्चों के अंदर छिपी हुई प्रतिभाओं को पहचानना, उन्हें विकसित करना, बच्चों में ज्ञान की भूख और विश्लेषण की क्षमता और तर्कशक्ति जागृत करना, उन्हें अच्छे मूल्य और संस्कार देना, अच्छा नागरिक बनने में मदद करना आदि है। लेकिन ये सारे काम भूलकर आज की शिक्षा पद्धति ज्यादा-से-ज्यादा ज्ञान बच्चों के ऊपर लाद देना चाहती है।

इसीलिए किताबों का बोझ बढ़ता जाता है। विभिन्न विषयों की समझ बढ़ाने के बजाय आज की व्यवस्था बच्चों को उन्हें रटने और रटकर परीक्षा भवन में उत्तर-पुस्तिका पर उतार देने पर जोर देती है। जाहिर है कि रटने का काम काफी उबाऊ और नीरस होता है। इसमें बच्चों को कोई मजा नहीं आता है। वे स्कूल बहुत बेमन से और दबाब में ही जाते हैं। स्कूल की छुट्टी होते ही ऐसे दौड़ते है व खुश होते हैं, मानों जेल से छूटे हों।

इस शिक्षा व्यवस्था की सबसे बड़ी खामी यह है कि बच्चों की विविध स्वाभाविक प्रतिभाओं को पहचान कर प्रोत्साहित एवं विकसित करने के बजाय यह सिर्फ रटने की प्रतिभा को ही मान्यता देती है। रटने में कुशल कुछ बच्चों को छोड़कर बाकी सारे बच्चे नालायक घोषित कर दिए जाते हैं और कुंठित होते हैं (इसका संबंध हमारी समाज व्यवस्था से भी है जो सिर्फ मानसिक काबिलियतों को ही ज्यादा पुरस्कृत करती है)। इसकी शिक्षा किताबी होती है और उसकी व्यावहारिक उपयोगिता और प्रासंगिकता बहुत कम होती है। इसमें श्रम और शारीरिक कौशलों व हुनरों की शिक्षा का कोई स्थान नहीं होता है। इसलिए इस शिक्षा को पाने के बाद हर नौजवान नौकरी ढूंढता है और नौकरी नहीं मिल पाती है, तो स्वयं को असहाय महसूस करता है। कई गरीब परिवारों के सामने यह दुविधा रहती है कि बच्चों को स्कूल भेजने से वे खेती या अन्य पारंपरिक हुनरों को नहीं सीख पाते हैं और इनके प्रति (शारीरिक श्रम के प्रति) एक हिकारत एवं तिरस्कार की भावना भी उनमें पैदा हो जाती है। वे न घर के रहते हैं, न घाट के।

आज की शिक्षण पद्धति में और भी कई कमियां है। इसकी पाठ्यपुस्तकों में काफी बदलाव की गुंजाइश है। विज्ञान, गणित सहित तमाम विषयों के शिक्षण के तरीके भी बदलने होंगे। 'होशंगाबाद विज्ञान' जैसे प्रयोगों से भी काफी सीखा जा सकता है। पाठ्यपुस्तकों व शिक्षा में कई तरह के पूर्वाग्रह, भेदभाव और असंतुलन छिपे हैं जो दलितों, आदिवासियों, पिछड़ों, ग्रामीणों, कन्याओं व अल्पसंख्यकों के खिलाफ जाते हैं। उन्हें भी दूर करना होगा।

दरअसल भारत में इस शिक्षा व्यवस्था की नींव लार्ड मैकाले ने डाली थी, जिनका उद्देश्य साम्राज्य चलाने के लिए बाबू और नौकर तैयार करना था। बाबूओं

की जरूरत सीमित होती है, इसीलिए सारे बच्चों को शिक्षा देने की इसमें कल्पना ही नहीं थी। देश के आजाद होने के बाद इसमें आमूल रूप से बदलाव किया जाना था। महात्मा गांधी ने भी प्रचलित शिक्षा पद्धति की तीखी आलोचना करते हुए 'बुनियादी तालीम' की रूपरेखा बनाई थी। किन्तु आजाद भारत की सरकारों ने कोई विशेष परिवर्तन किए बगैर मैकाले की शिक्षा को जारी रहने दिया, जिसके दुष्परिणाम हम आज भोग रहे हैं। आजादी के आंदोलन के साथ और देश के साथ आजाद भारत के शासकों ने जो विश्वासघात किए, उनमें एक बड़ा विश्वासघात शिक्षा के क्षेत्र में हुआ।

परीक्षा प्रणाली सुधार की एक पूर्व शर्त

सवाल –*आपने परीक्षा प्रणाली के दोषों के बारे में कुछ नहीं कहा। इसके बारे में बीच-बीच में काफी आवाजें उठती रही हैं। भारत सरकार के नए मानव संसाधन मंत्री श्री कपिल सिब्बल ने भी 10वीं कक्षा की बोर्ड परीक्षा तीन वर्ष के अंदर खत्म करने की घोषणा की है। मध्यप्रदेश जैसे कुछ राज्यों में 5वीं और 8वीं बोर्ड की परीक्षा पहले ही खत्म कर दी गई है। शिक्षा अधिकार कानून में भी प्रावधान है कि कक्षा 8 से पहले कोई बोर्ड परीक्षा नहीं होगी और न ही किसी को फेल किया जाएगा। इसके बारे में आपका क्या कहना है?*

जवाब - हमारी मौजूदा शिक्षा व्यवस्था के कई दोषों की जनक परीक्षा प्रणाली है। इन परीक्षाओं में हम सिर्फ बच्चों की 'स्मरण शक्ति' और रट्टा क्षमता की परीक्षा लेते हैं, उनके ज्ञान, समझ व कौशल की नहीं। इसलिए बच्चे भी पढ़ते नहीं, सिर्फ रटते हैं। कुंजियों, गाईडों, 20 प्रश्न आदि का जोर भी इसी परीक्षा व्यवस्था की देन है। परीक्षा का डर और परीक्षा की तैयारी का बोझ भी बच्चों की जान निकाल देता है। इस परीक्षा प्रणाली का विकल्प खोजना ही होगा। कई लोगों व संस्थाओं ने इस दिशा में महत्वपूर्ण प्रयोग किए हैं।

सिद्धांत रूप में यह भी ठीक है कि बच्चों को थोक में फेल करते जाने के बजाय स्कूल और शिक्षकों की जिम्मेदारी हो कि वे कमजोर बच्चों पर विशेष ध्यान दें और उन्हें मदद करें। फिर कुछ बच्चे धीमे सीखते हैं और कुछ बड़ी उम्र में

पढ़ने-सीखने-समझने की गति पकड़ते हैं। बेहतर है कि उन्हें फेल करने के बजाय अपनी-अपनी गति से चलने दिया जाए।

किंतु इस सिद्धांत को अमली जामा पहनाने के लिए पहली शर्त है कि हमारे सरकारी स्कूलों की बदहाली दूर की जाए, पढ़ाई का स्तर सुधारा जाए, उनमें पर्याप्त शिक्षक हों जो बच्चों के मनोविज्ञान को समझने में प्रशिक्षित तथा संवेदनशील हों। इसके बगैर यदि मौजूदा हालत में ही परीक्षाएं या बोर्ड परीक्षाएं हटा दी जाती हैं, तो सरकारी स्कूलों में पढ़ाई के लिए रहा-सहा दबाव भी खत्म हो जाएगा। निजी स्कूलों में तो पढ़ाई चलती रहेगी, किंतु सरकारी स्कूलों की दुर्गति और बढ़ जाएगी।

सवाल - *कुछ लोगों का मानना है कि दोष स्कूल के ढांचे में ही है और हमें स्कूलों की कोई जरूरत नहीं है। बच्चों की असली शिक्षा तो घर, परिवार और समाज में होती है। इवान इलिच जैसे विद्वानों ने तो 'डिस्कूलिंग सोसायटी' नामक किताब लिखी है। और समाज को स्कूल के कब्जे से मुक्त करने का आह्वान किया है। इस बारे में आप क्या सोचते हैं?*

जवाब - स्कूलों के मौजूदा ढांचे के बारे में आलोचना बहुत हद तक सही है। यह काफी घुटन भरा, एकांगी और विषमतापूर्ण है। शिक्षा व्यवस्था की घुटन, ज्यादती और पाखंड के बारे में रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कहानी ''तोते की शिक्षा'' अद्‌भुत एवं मार्मिक है। किंतु जरूरत इस व्यवस्था को सुधारने की है। स्कूल-विरोधियों की दलीलें मुझे अतिवादी लगती है और मुझे लगता है कि औपचारिक शिक्षा की जरूरत है। स्कूल ज्यादा खुले, बच्चों के अनुकूल और ज्यादा संवेदनशील होना चाहिए। शिक्षा का एक हिस्सा (जैसे भूगोल की पढ़ाई) बीच-बीच में चारदीवारी से बाहर जाकर भी हो सकता है। खेल और हुनर भी शिक्षा का हिस्सा होने चाहिए। मशहूर भारतीय शिक्षाशास्त्री गिजुभाई की पुस्तक 'दिवास्वप्न' या जापानी 'तोत्तो चान' की कहानियों से हम काफी कुछ सीख सकते हैं। गांधी हमारे प्रमुख मार्गदर्शक हो सकते हैं।

शिक्षा का माध्यम और भाषा का सवाल

सवाल *-एक सवाल शिक्षा के माध्यम का भी है। आजकल 'इंग्लिश मीडियम' में बच्चों को पढ़ाने की होड़ चली है। इसके बारे में आपकी क्या राय है? इसके अलावा विभिन्न भाषाओं की शिक्षा की क्या नीति होगी?*

जवाब - सभी शिक्षाशास्त्री इस मामले में एकमत हैं कि मातृभाषा ही शिक्षा का सबसे अच्छा माध्यम है। इसलिए 'इंग्लिश मीडियम' के पीछे की यह दौड़ गलत है। यह बच्चों के लिए भी नुकसानदेह है। इससे बच्चों पर दोहरा बोझ हो जाता है। वे भाषा में ही उलझ जाते हैं, विषय को समझ नहीं पाते हैं। नतीजतन और ज्यादा रटने को मजबूर होते हैं। एक विदेशी भाषा में रटना और ज्यादा कष्टसाध्य व उबाऊ काम होता है।

यह सही है कि आज माता-पिता अपने बच्चों को अंग्रेजी पढ़ाना चाहते हैं, क्योंकि वे देखते हैं कि चारों ओर अंग्रेजी का वर्चस्व है। किसी भी क्षेत्र में आगे बढ़ना हो, तो अंग्रेजी की जरूरत होती हैं। लेकिन इसके लिए अंग्रेजी एक भाषा या विषय के रूप में सीखना पर्याप्त है। सारी शिक्षा अंग्रेजी माध्यम में हासिल करना बेवकूफी है और आत्मघाती है। अंग्रेजी की पढ़ाई भी पहली कक्षा से बच्चों पर लादने की कोई जरूरत नहीं है, जैसा कि पिछले समय में ज्यादातर राज्य सरकारों ने कर दिया है। पहले की भांति, कक्षा 5 या 6 से उसकी पढ़ाई शुरू की जा सकती है। इसे भी अनिवार्य के बजाय ऐच्छिक रखना चाहिए। इस वर्ष मध्यप्रदेश का उच्च माध्यमिक (कक्षा 10) का परीक्षाफल बहुत खराब (35 प्रतिशत) रहा है। सबसे ज्यादा (52 प्रतिशत से ज्यादा) बच्चे अंग्रेजी में ही फेल हुए। देश के बहुसंख्यक बच्चों पर एक विदेशी भाषा लादकर उनके आगे बढ़ने के अवसर क्यों रोके जाएं और उन्हें क्यों कुंठित किया जाए?

जहां तक अंग्रेजी के वर्चस्व की समस्या है, उसका एकमात्र उपाय यह है कि देश से इस वर्चस्व को खत्म किया जाए, न कि बच्चों पर अंग्रेजी भाषा लादी जाए। देश के सारे बच्चे कभी भी अंग्रेजी में प्रवीण नहीं हो सकते। इसलिए अंग्रेजी का प्रभुत्व हमेशा देश के साधारण बच्चों की प्रगति रोकने के लिए एक दीवार का

काम करेगा और ऊपर के अंग्रेजीदां तबके के वर्चस्व को बनाए रखने का काम करेगा।

अतएव शिक्षा के माध्यम के बारे में श्रेष्ठ नीति यही होगी कि शुरूआती कक्षाओं (कक्षा 3 या 5 तक) में बच्चे की मातृभाषा और उसके बाद उस राज्य की प्रांतीय भाषा में शिक्षा दी जाए। अंग्रेजी का शिक्षण एक भाषा के रूप में (न कि माध्यम के रूप में) माध्यमिक शालाओं में शुरू हो सकता है। इसी के साथ उतना ही महत्वपूर्ण है बच्चों को एक अन्य भारतीय भाषा पढ़ाया जाना। दूसरे शब्दों में, कोठारी आयोग द्वारा सुझाए गए त्रि-भाषा सूत्र को ठीक तरीके से लागू करना होगा।

पढ़ाई बीच में छोड़ने की समस्या

सवाल *- शिक्षा में एक बड़ी समस्या बच्चों द्वारा बीच में पढ़ाई छोड़ देने की है। भारत में बच्चों के स्कूल छोड़ने (ड्रॉप आउट) की दर बहुत ज्यादा है। इसका क्या समाधान है?*

जवाब - ज्यादातर स्कूल छोड़ने वाले बच्चे गरीब और दलित-पिछड़े होते हैं। मोटे तौर पर बच्चों द्वारा स्कूल छोड़ने के तीन कारण हैं। एक, स्कूलों की नीरस और उबाऊ शिक्षा। दो, गरीब एवं दलित बच्चों के साथ दुर्व्यवहार, डांट-फटकार और उन्हें सजा देना। तीन, गरीबी और कठिन परिस्थितियों में आने वाले पारिवारिक संकट। डॉ. अनिल सद्गोपाल का कहना है कि यह ड्रॉप आउट नहीं, वाक आउट है या पुश आउट है। अर्थात् एक गलत शिक्षा व्यवस्था में बच्चे या तो स्कूल छोड़ने को मजबूर किये जाते हैं या फिर विरोध में छोड़ देते हैं।

पहले दो कारणों को तो तत्काल दूर किया जा सकता है। यह कहा जा सकता है कि गरीबी मिटाना आसान नहीं है और शिक्षा के दायरे से बाहर की बात है। किंतु शिक्षा पूरी तरह मुफ्त बनाकर, शिक्षा संबंधी पूरा खर्च सरकार द्वारा वहन करके और पर्याप्त छात्रवृत्तियों की व्यवस्था करके तीसरे कारण को भी काफी हद तक निष्प्रभावी बनाया जा सकता है।

क्या हम क्रांति का इंतजार करें?

सवाल – *अंत में, एक सवाल और। शिक्षा में जितने क्रांतिकारी परिवर्तनों की जरूरत आप बता रहे हैं, क्या वह मौजूदा सामाजिक-आर्थिक-राजनैतिक ढांचे में संभव है? जब चारों ओर बाजारवाद, मुनाफाखोरी, निजीकरण व गैर-बराबरी का बोलबाला हो, तो क्या समान स्कूल प्रणाली को लागू करना संभव है? क्या शिक्षा में बदलाव अलग से हो सकता है या एक बड़े व्यवस्था-परिवर्तन का हिस्सा होगा?*

जवाब – आपने अच्छा सवाल उठाया है। यह बिलकुल सही है कि शिक्षा भी इस ढांचे का हिस्सा है। इसलिए शिक्षा में परिवर्तन आसान नहीं होगा, उसके लिए काफी संघर्ष करना होगा और नीहित स्वार्थों द्वारा इनका विरोध भी होगा। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि हम इस काम को असंभव मानकर चुप बैठ जाएं और बड़े क्रांतिकारी परिवर्तन का इंतजार करते रहें। कोई भी क्रांति तभी होती है, जब विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के संकटों से ग्रस्त आम जनता अपने हकों के लिए संघर्ष करते हुए आगे बढ़ती है और विविध तरह के संघर्ष मिलकर इसकी जमीन तैयार करते हैं।

फिर, सबको मुफ्त, समान और बेहतर शिक्षा के लिए कोई भी संघर्ष बेकार नहीं जाएगा। उससे शिक्षा के क्षेत्र में जनहितकारी बदलावों की दिशा में तो हम आगे बढ़ेंगे ही, पूरी सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था में बदलाव के लिए भी दबाव बनेगा।

अधिक जानकारी के लिए संदर्भ सामग्री

सवाल – *आपकी बातों से मैं काफी हद तक संतुष्ट हुआ। यदि मैं इस विषय में और अधिक पढ़ना, समझना एवं जानकारी लेना चाहूं, तो क्या आप मुझे कुछ संदर्भ बताएंगे?*

जवाब – जरूर, आप निम्न पुस्तकें व लेख पढ़ सकते हैं –

- डॉ. अनिल सद्गोपाल, 'शिक्षा में बदलाव का सवाल', ग्रंथशिल्पी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000, मूल्य 125 रु.

- डॉ. अनिल सद्गोपाल, 'संसद में शिक्षा का अधिकार छीनने वाला बिल', किशोर भारती - सरोकार, जून 2009, भोपाल, मूल्य 20 रु.
- किशन पटनायक 'शिक्षा संबंधी एक मृत शिलालेख', (उनकी पुस्तक 'विकल्पहीन नहीं है दुनिया' में प्रकाशित, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली), मूल्य 80 रु.
- भाई वैद्य, 'संपूर्ण शिक्षा निःशुल्क, समान व गुणवत्तापूर्ण क्यों और कैसे?', समाजवादी अध्यापक सभा, साने गुरुजी स्मारक, पुणे, मूल्य 20 रु.
- महात्मा गांधी, 'टूवर्ड्स न्यू एजुकेशन', नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, मूल्य 5 रु.
- कृष्ण कुमार, 'राज, समाज और शिक्षा', दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लि., नई दिल्ली, 1978, मूल्य 25 रु.
- पाओले फ्रेरे, 'उत्पीड़ितों का शिक्षाशास्त्र' (अनुवाद - रमेश उपाध्याय), ग्रंथशिल्पी प्रकाशन, नई दिल्ली।
- गिजुभाई, 'दिवास्वप्न' (अनुवाद - काशीनाथ त्रिवेदी), नेशनल बुक ट्रस्ट, 1991, मूल्य 30 रु.
- रेशमा भारती, 'स्कूल : पास या फेल?', सोशल चेंज पेपर्स, सी-27, रक्षाकुंज, पश्चिम विहार, नई दिल्ली, मूल्य 80 रु.
- रवीन्द्रनाथ ठाकुर, 'रवीन्द्रनाथ का शिक्षा दर्शन', ग्रंथशिल्पी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1977, मूल्य 75 रु.
- सुशील जोशी, 'जश्न-ए-तालीम' (होशंगाबाद विज्ञान का शैक्षिक सफरनामा), एकलव्य, भोपाल, 2008, मूल्य 160 रु.
- बारबियाना स्कूल के छात्र, 'अध्यापक के नाम पत्र' (अनुवादक - सरला मोहनलाल), ग्रंथशिल्पी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996, मूल्य 150 रु.

आइए, देशव्यापी मुहिम छेड़ें

सवाल - *अब मुझे भी लगने लगा है कि शिक्षा के बाजारीकरण की मौजूदा प्रवृत्तियों को रोकना ओर शिक्षा व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन कर समान स्कूल प्रणाली को स्थापित करना बहुत जरूरी है। इसके लिए देशव्यापी मुहिम छेड़ना होगा और एक जनांदोलन खड़ा करना होगा। यह बताइए कि मैं इसमें क्या योगदान कर सकता हूं और इस अभियान से जुड़ने के लिए मैं किससे संपर्क करुं?*

जवाब - सबसे पहला काम जनमत बनाने का है। शिक्षा की मौजूदा हालातों से बहुत लोग बेचैन हैं और असंतुष्ट हैं, किंतु इनकी जड़ें कैसे सरकार की नीतियों और वैश्विक प्रक्रियाओं में है, भारत के शासकवर्ग की अनिच्छा और नीहित स्वार्थों में है, यह बहुत लोग नहीं देख पाते हैं। लोग यह भी नहीं सोच पाते हैं कि इसका समाधान और विकल्प क्या है। इसलिए कारण-परिणामों का संबंध स्पष्ट करते हुए और एक वैकल्पिक शिक्षा प्रणाली की तस्वीर सामने रखते हुए वैचारिक स्पष्टता को फैलाने की जरूरत है। इसके लिए आप विभिन्न स्तरों पर गोष्ठियां, परिचर्चाएं एवं बहस आयोजित कर सकते हैं, परचे व पुस्तिकाएं बांट सकते हैं, संपादक के नाम पत्र व लेख छपवा सकते हैं। स्थानीय स्तर पर शिक्षकों, पालकों, विद्यार्थियों और नागरिकों के साथ मिलकर 'शिक्षा अधिकार मंच' बना सकते हैं। इस मंच के माध्यम से स्थानीय और राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर शिक्षा में दिखाई दे रही समस्याओं, गड़बड़ियों और विकृतियों के बारे में आवाज उठा सकते हैं। आप ज्ञापन दे सकते हैं, हस्ताक्षर अभियान चला सकते हैं, प्रदर्शन व धरना भी कर सकते हैं। फिर जिस प्रकार की वैकल्पिक शिक्षा की हम बात कर रहे हैं, उसके कुछ रचनात्मक प्रयोग भी गांधी की तरह आप शुरू कर सकते हैं।

सबको शिक्षा एक समान,

मांग रहा है हिंदुस्तान!

शिक्षा अधिकार कानून क्यों एक ढकोसला है?

संसद में 2009 में पारित 'बच्चों का नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार विधेयक, 2008' में कई गंभीर खामियां हैं -

- इसमें शिक्षा के बढ़ते निजीकरण और भेदभाव पर रोक लगाने के बजाय उसे मान्यता दी गई है। इसमें स्कूलों को चार श्रेणियों में बांटा गया है और उनके लिए अलग-अलग नियम बनाए गए हैं - सरकारी स्कूल, सरकारी विशिष्ट स्कूल, अनुदान प्राप्त निजी स्कूल एवं गैर अनुदान प्राप्त निजी स्कूल। (धारा 2ढ)
- आसपास के सारे बच्चों को मुफ़्त एवं अनिवार्य शिक्षा देने की जिम्मेदारी से विशिष्ट एवं निजी स्कूलों को बरी कर दिया है। उन्हें केवल अपनी संस्था के 25 प्रतिशत के बराबर विद्यार्थियों को मुफ़्त शिक्षा देना होगा (धारा 12)। बाकी गरीब बच्चों के लिए पहले की तरह घटिया, उपेक्षित, पतनशील सरकारी शिक्षा चलती रहेगी। इससे दोहरी शिक्षा व्यवस्था बनी रहेगी। यह विधेयक समान स्कूल प्रणाली स्थापित करने के बजाय उससे और दूर ले जाता है।
- इसमें केपिटेशन फीस (यानी जो अधिसूचित न हो) पर रोक लगाई है, किंतु अधिसूचित करके चाहे जितनी फीस वसूल करने की आजादी निजी स्कूलों को दी गई है (धारा 13 एवं 2ख)।
- इसमें पैरा-शिक्षक वाली व्यवस्था को खत्म नहीं किया गया है। शिक्षकों के स्थायी कैडर और सम्मानजनक वेतन को सुनिश्चित नहीं किया गया है। कुछ दिनों में देश में नियमित स्थाई शिक्षकों का कैडर ही खत्म हो जाएगा।
- शिक्षकों एवं भवन के मापदंड बहुत कम रखे गए हैं। इससे लाखों की संख्या में सरकारी स्कूलों में दो-तीन कमरों में दो-तीन शिक्षक एक साथ पांच कक्षाएं पढ़ाते रहेंगे।
- शिक्षकों को जनगणना, आपदा राहत और सभी प्रकार के चुनावों में लगाने की छूट दी गई है, जिससे सरकारी स्कूलों की शिक्षा प्रभावित होती रहेगी

(धारा 27)। चूंकि निजी स्कूलों के शिक्षकों को इन कामों में नहीं लगाया जाएगा, यह गरीब बच्चों के साथ एक और भेदभाव होगा।

- इस विधेयक में शिक्षा के अधिकार को कक्षा 1 से 8 तक सीमित कर दिया गया है, जबकि कम-से-कम कक्षा 12 तक की शिक्षा का अधिकार मिलना चाहिए। पूर्व प्राथमिक शिक्षा का अधिकार भी नहीं दिया गया है [धारा 2-च एवं 3(1)]।
- व्यावहारिकता के नाम पर अंग्रेजी माध्यम के महंगे स्कूलों की गुंजाइश छोड़ दी गई है, जिससे शिक्षा में भेदभाव व गैर-बराबरी चलती रहेगी [धारा 29(2)-च]।
- सरकारी अनुदान न लेने वाले निजी स्कूलों को 'स्कूल प्रबंध समिति' के प्रावधान से बाहर रखकर उनमें किसी तरह की जनभागीदारी की संभावना खत्म कर दी है और उन्हें पूरी मनमानी करने की छूट दे दी गई है।
- निजी स्कूलों द्वारा इस कानून का उल्लंघन करने पर जो भी दंड के प्रावधान हैं, उनमें कोई मुकदमा करने के पहले सरकार द्वारा नियुक्त अफसर की पूर्व मंजूरी लेना पड़ेगा (धारा 36) यानी निजी स्कूलों के खिलाफ कोई भी कार्यवाही बहुत मुश्किल होगी।
- यह कानून बनने से देश में शिक्षा का बढ़ता निजीकरण, व्यवसायीकरण और बाजारीकरण नहीं रूकेगा। शिक्षा में मुनाफाखोरी बंद नहीं होगी।
- इस विधेयक के साथ वित्तीय ज्ञापन में वित्तीय जरूरतों का आकलन न करके उन्हें अस्पष्ट छोड़ दिया गया है। इससे सरकार के लिए अपनी पूरी वित्तीय जिम्मेदारी से भागने के दरवाजे खुले रहेंगे।
- वास्तव में देश के सारे बच्चों को अच्छी एवं समग्र शिक्षा का अधिकार देने के लिए देश की शिक्षा व्यवस्था, शिक्षा नीति एवं आर्थिक नीतियों में बुनियादी बदलाव करने की जरूरत है। उस तरह का बदलाव लाने के बजाय एक आधे-अधूरे यथास्थितिवादी कानून का झुनझुना लोगों को पकड़ाने की कोशिश हो रही है।

समान स्कूल प्रणाली क्या है?

- इसमें प्रत्येक स्कूल का एक क्षेत्र होगा, जहां रहने वाले सारे बच्चे (अमीर-गरीब, किसी भी जाति-धर्म के, लड़का-लड़की) अनिवार्य रूप से उसी स्कूल में पढ़ेंगे और उनकी शिक्षा की जिम्मेदारी उस स्कूल की होगी। इसके लिए कानून बनाया जाएगा, जो पूरे देश में लागू होगा।
- यह प्रणाली पूर्व-प्राथमिक शिक्षा (नर्सरी/केजी) से लेकर कक्षा 12 तक लागू होगी।
- हर स्कूल में कम-से-कम केंद्रीय विद्यालय के समकक्ष योग्यता एवं वेतन वाले पर्याप्त शिक्षक एवं सुविधाएं (भवन, प्रयोगशालाएं, पुस्तकालय, खेल सुविधाएं आदि) उपलब्ध कराए जाएंगे। इसके लिए आवश्यक संसाधन सरकार उपलब्ध कराएगी। स्कूली शिक्षा पूरी तरह मुफ्त होगी।
- इसमें निजी स्कूल भी हो सकते हैं, किंतु उन्हें इसके नियम-कानूनों को मानना होगा और अपने पड़ोस के सारे बच्चों को बिना भेदभाव के दाखिला देना होगा। उन्हें किसी प्रकार का शुल्क वसूलने का अधिकार नहीं होगा।
- इन स्कूलों की पाठ्यचर्या के लिए राष्ट्रीय मार्गदर्शिका होगी, किंतु इनका **प्रबंधन** अधिकतम विकेंद्रीकृत और जनभागीदारी से हो सकता है। एक राज्य के सारे स्कूलों के लिए एक ही परीक्षा बोर्ड होगा, किंतु पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकों, शिक्षण पद्धति में स्थानीय परिस्थितियों के मुताबिक विविधता और प्रयोगों की गुंजाइश रहेगी।
- सभी स्कूलों में शिक्षा का माध्यम मातृभाषा रहेगी। कक्षा 5 या 6 से अन्य भारतीय भाषाओं तथा अंग्रेजी को एक विषय में रूप में पढ़ाया जाएगा।
- दुनिया के कई देशों में काफी हद तक समान स्कूल प्रणाली या उससे मिलती-जुलती व्यवस्था रही है। भारत में सबसे पहले शिक्षा पर गठित **कोठारी आयोग** ने 1966 में अपनी रिपोर्ट में सिद्धांत रूप में इसकी सिफारिश की थी।

मुक्त बाजार में शिक्षा का अधिकार*

''डॉ० मनमोहन सिंह ने 1991 में अर्थव्यवस्था के लिए जो किया है, मैं वह शिक्षा व्यवस्था के लिए करना चाहता हूं।''

भारत के नए शिक्षा मंत्री श्री कपिल सिब्बल ने एक साक्षात्कार में यह कहकर अपने इरादे स्पष्ट कर दिए हैं। वे उत्साही, जोशीले और महत्वाकांक्षी मंत्री हैं। वे बहुत जल्दी में भी हैं। इसी साक्षात्कार में उन्होंने कहा कि इतना समय नहीं है कि शिक्षा में बदलावों पर विचार करने के लिए समितियां बनाई जाएं और उनकी रपट आने का इंतजार किया जाए।

भारत की शिक्षा व्यवस्था निश्चित ही बहुत बुरी हालत में है। इसमें क्रांतिकारी बदलाव की जरूरत है। देश को जोशीले मंत्रियों की भी जरूरत है, बशर्ते यह जोश सही दिशा में हो। सवाल यह है कि सिब्बल साहब के इन प्रस्तावित सुधारों से मर्ज दूर होगा या ज्यादा बिगड़ेगा?

कपिल सिब्बल के 100 दिन के कार्यक्रम की घोषणा में दो तरह की बातें हैं। एक ओर वे भारतीय बच्चों को शिक्षा का अधिकार देने का कानून संसद में पास कराने की बात करते हैं और इसके लिए सारे दलों का सहयोग मांगते हैं। दूसरी ओर वे सरकारी-निजी भागीदारी, निजी क्षेत्र को बढ़ावा देने और विदेशी शिक्षण संस्थानों के लिए भारत का दरवाजा खोलने की बात करते हैं। दोनों में कोई विरोध उन्हें नजर नहीं आता। उनके जैसे लोग बड़ी आसानी से कह देते हैं कि निजी स्कूलों में पैसे वालों के बच्चे जाएंगे और गरीब बच्चों के लिए सरकारी स्कूल रहेंगे। निजी स्कूलों में भी 25 प्रतिशत स्थान गरीब बच्चों के लिए सुरक्षित कर देंगे, जिनकी ट्यूशन फीस सरकार देगी। प्रतिभाशाली गरीब बच्चों के लिए नवोदय विद्यालय, कस्तूरबा कन्या विद्यालय, उत्कृष्ट विद्यालय आदि के साथ अब 'मॉडल स्कूल' भी निजी भागीदारी से खोले जाएंगे। यह भी हो सकता है कि गरीब बच्चों

---

*जनसत्ता, दिल्ली (16जुलाई 2009) में संपादित रूप में ''बाजार बनाम शिक्षा का अधिकार'' शीर्षक से प्रकाशित।

को वाउचर दे दिए जाएं, जिनको देकर वे मनचाहे निजी स्कूल में पढ़ सकेंगे और उन वाउचरों के बदले उनकी फीस का भुगतान सरकार कर देगी।

इन बाजारवादी नुस्खों में कई निहितार्थ छुपे हैं। एक तो यह कि सरकार ने मान लिया है कि देश के सारे बच्चों को शिक्षित करने का काम उसका नहीं है। भारत की सरकारों का बुनियादी जिम्मेदारी से मुंह मोड़ने का यह एक और बेशर्मी भरा बयान है। दूसरा, सारे नुस्खे ऐसे हैं जो शिक्षा के बाजार को उन्मुक्त रूप से बढ़ावा देना चाहते हैं। तीसरा, देश के बच्चों के एक हिस्से को ही अच्छी गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मिलेगी। इन उपायों से भारत में शिक्षा के क्षेत्र में भेदभाव और गैर-बराबरी ज्यादा मजबूत होगी। आखिर सवाल यह है कि निजी स्कूलों में 25 प्रतिशत आरक्षण गरीब बच्चों के लिए करने से क्या समस्या हल हो जाएगी? वर्तमान में देश में स्कूल जाने वाली उम्र के बच्चों की संख्या 19 करोड़ हैं। इनमें से करीब 4 करोड़ मान्यता प्राप्त निजी स्कूलों में पढ़ते हैं। यदि यह मान लिया जाए कि शिक्षा का अधिकार कानून बन जाने के बाद अतिरिक्त एक करोड़ बच्चे निजी स्कूलों में दाखिला ले लेंगे, तो भी बाकी 14 करोड़ बच्चों का क्या होगा? क्या उनके लिए वही उपेक्षित, अभावग्रस्त, पतनशील सरकारी स्कूल रहेंगे, जिनमें आधे बच्चे बीच में ही पढ़ाई छोड़ने को मजबूर होते हैं?

यह एक विडंबना है कि देश के सारे बच्चों को शिक्षा का अधिकार देने की बात करने वाली सरकार के पास सबको अच्छी शिक्षा मिल सके, इसका कोई कार्यक्रम नहीं है। वह तो शिक्षा में भेदभाव को बढ़ावा दे रही है। शिक्षा की दोहरी व्यवस्था को वह अब कई स्तरीय और बहुपरती बना रही है। शिक्षा का बाजार आज इतना विकसित हो गया है कि लोग अपनी आर्थिक हैसियत के मुताबिक स्कूल चुन सकते हैं। नवउदारवादी अर्थशास्त्र की भाषा में कहें तो शिक्षा में उपभोक्ताओं को इतनी 'च्वाईस' कभी नहीं थी। हर ब्रांड के और हर श्रेणी के स्कूल उपलब्ध है। लेकिन स्कूल चयन की यह आजादी किनके लिए है? जिनके पास फीस देने के पैसे नहीं है, उनकी 'च्वाईस' का क्या होगा? स्पष्ट है कि भारत जैसे देश में निजी स्कूलों के माध्यम से कभी भी सबको शिक्षा का लक्ष्य हासिल नहीं होगा।

जिन सरकारी स्कूलों में कभी हर तबके के बच्चे पढ़ते थे, वे आज निर्धनतम वर्ग के बच्चों के लिए आरक्षित हो गए हैं। इससे उनकी हालत और

बिगड़ती जा रही है। उनकी तरफ किसी का ध्यान नहीं है। वे उपेक्षित, वंचित, अभावग्रस्त और बीमार होते जा रहे हैं। इस दुष्चक्र को तोड़ने के बजाय सरकार खुद उसे मजबूत कर रही है। पिछले डेढ़ दशक में सरकार ने जानबूझकर सरकारी शिक्षा की हालत बिगाड़ी है।

विश्व बैंक की मदद से 'सर्व शिक्षा अभियान' चलाने वाली भारत सरकारों ने कम-से-कम दो-तीन तरह से सरकारी शिक्षा व्यवस्था को वंचित करने और बिगाड़ने का काम किया है। एक तो हर प्रांत में स्थायी, पूर्णकालिक एवं प्रशिक्षित शिक्षकों की नियुक्ति बंद करके उनके स्थान पर अलग-अलग नामों से पैरा-शिक्षकों की भरती शुरु कर दी, जो अप्रशिक्षित व अस्थायी होते हैं और जिन्हें बहुत कम वेतन दिया जाता है। शिक्षक अब प्रायः ठेका मजदूर या दैनिक मजदूर बन गए हैं।

दूसरा काम यह हुआ है कि गांवों की शालाओं में इन पैरा-शिक्षकों की नियुक्ति भी पूरी संख्या में नहीं की जा रही है। शिक्षक-विद्यार्थी अनुपात ऐसे तय किए गए हैं कि कई प्राथमिक शालाओं में दो या तीन शिक्षक ही होते हैं। यानी सरकारी शिक्षकों से इस चमत्कार की उम्मीद की जाती है कि वे दो, तीन या चार कक्षाओं को एक साथ पढ़ाएंगे। भारत के गरीब बच्चों को सरकार ने इस लायक भी नहीं समझा कि उनकी एक कक्षा के लिए कम-से-कम एक शिक्षक दिया जाए। तीसरी बात यह है कि कम संख्या वाले इन्हीं सरकारी शिक्षकों से चुनाव, जनगणना, पशुगणना, गरीबी सर्वेक्षण, अन्य कई तरह के सर्वेक्षण आदि गैर-शिक्षणीय काम लेना बढ़ता गया है। भारत के सरकारी शिक्षकों को दोष देने का फैशन हो गया है, किन्तु उनकी गैरहाजिरी का यह एक बड़ा कारण है। ये नीतियां और हालातें जारी रहती हैं और इन्हें बदला नहीं जाता है, तो शिक्षा का अधिकार कानून एक पाखंड और छलावा ही बन जाएगा।

यही कारण है कि देश में सरकारी स्कूलों की संख्या में तो काफी प्रगति दिखाई देती हैं, किन्तु उनकी शिक्षा के स्तर में लगातार गिरावट आई है। स्कूलों में दर्ज बच्चों की संख्या भी 95 प्रतिशत तक पहुंचने का दावा किया जा रहा है, किंतु कक्षा 8 तक पहुंचते-पहुंचते आधे से ज्यादा बच्चे शाला छोड़ देते हैं। जो भारत दुनिया की आर्थिक महाशक्ति बनने का ख्वाब देख रहा है, उसे यह होश नहीं है

कि देश के आधे से ज्यादा बच्चे आज भी न्यूनतम स्कूली शिक्षा भी नहीं हासिल कर पा रहे हैं।

एक तरह से देखा जाए, तो यह कोई भारतीय सरकारों की चूक या लापरवाही नहीं है। शासक वर्ग के नीहित स्वार्थ इसमें है कि देश के साधारण बच्चे शिक्षित न हों, अन्यथा उनके विशेषाधिकारों को चुनौती मिलने लगेगी। आजाद भारत में 60 वर्ष बाद भी अंग्रेजी का वर्चस्व भी इसीलिए बनाकर रखा गया है। फिर विश्व बैंक का एजेंडा भी इसमें जुड़ गया। वैश्वीकरण के नए दौर में शिक्षा के निजीकरण और बाजारीकरण के लिए जरुरी था कि सरकारी व्यवस्थाएं बिगड़ती जाए।

सचमुच इस दौर में शिक्षा, स्वास्थ्य आदि का बाजार तेजी से बढ़ा है। अब तो ये देश के सबसे तेजी से बढ़ते व्यवसाय हैं। कॉलेजों-स्कूलों के साथ-साथ कोचिंग व ट्यूशन का नया धंधा भी तेजी से बढ़ रहा है। कई शिक्षण संस्थान व कोचिंग संस्थान अखबारों में पूरे-पूरे पृष्ठ के विज्ञापन देते हैं और बड़े-बड़े होर्डिंग लगाते हैं। उनकी कमाई करोड़ों में है। मनमोहन सिंह और मोंटेकसिंह की नजर में यह देश की प्रगति की निशानी है और इससे राष्ट्रीय आय बढ़ रही है।

किंतु इस बढ़ते हुए बाजार में देश के साधारण बच्चे और युवा पिस रहे हैं। गरीब बच्चों को इस बाजार से बाहर कर दिया जाता है, तो साधन-संपन्न घरों में भी छुटपन से बच्चों को प्रतिस्पर्धा में झोंक दिया जाता है। उनका बचपन उनसे छीन लिया गया है। बच्चों की घुटन, कुंठाएं, तनाव एवं आत्महत्याएं बढ़ती जा रही हैं। महंगी कोचिंग, केपिटेशन शुल्क, डोनेशन और ऊंची फीस के साथ शिक्षा पैसेवालों के लिए आरक्षित होती जा रही है। यह ऐसा आरक्षण है जो आरक्षण-विरोधियों को दिखाई नहीं देता है। गरीब व साधारण बच्चों के लिए शिक्षा के दरवाजे बंद होते जा रहे हैं। कपिल सिब्बल बोर्ड परीक्षा का तनाव कम करने की बात तो कर रहे हैं, लेकिन इस गलाकाट प्रतिस्पर्धा के दोष उनको दिखाई नहीं देते। उल्टे कॉलेज में दाखिले के लिए अखिल भारतीय प्रवेश परीक्षा शुरू करके वे साधारण बच्चों के लिए एक और बैरियर लगाना चाहते हैं। इससे कोचिंग का बाजार भी और बढ़ेगा।

शिक्षा के इस बाजार में कई घटिया, गैर-मान्यता प्राप्त, फर्जी शिक्षा-दुकानें भी खुल गई हैं। इस होड़ व अंधी दौड़ में राह खोजते कई अभिभावक एवं युवा उनके शिकार हो रहे हैं। विदेशी शिक्षण संस्थानों के लिए भारत के दरवाजे खोलने से ज्यादातर इसी तरह के बहुराष्ट्रीय व्यापारी आएंगे तथा शिक्षा में लूट व ठगी बढ़ेगी।

कभी-कभी मनमोहन सिंह, मोंटेकसिंह और कपिल सिब्बल जैसों तक साधारण लोगों की पीड़ा पहुंचती है, तो उसके उपाय भी वे बाजार के पिटारे से ही निकालकर लाते हैं। जैसे महंगी शिक्षा के लिए उनका नुस्खा है कि बैंक से शिक्षा ऋण ले लो। नए बजट में गरीब छात्रों के लिए उस पर ब्याज अनुदान की घोषणा भी हो गई है। लेकिन कितने विद्यार्थी यह ऋण ले पाएंगे? साधारण आदमी के लिए यह ऋण हासिल करना कितना मुश्किल है, यह अंदाज ऊपर बैठे लोगों को नहीं है। कुछ साल पहले केरल में घटित रजनी कांड पर भी उन्होनें ध्यान नहीं दिया होगा। इस गरीब दलित लड़की को इंजीनियरिंग कॉलेज में सीट तो मिल गई थी, किंतु बैंकों के कई चक्कर लगाने पर कर्ज नहीं मिल पाया। आखिरकार उसने आत्महत्या कर ली।

कपिल सिब्बल देश के श्रेष्ठी वर्ग से आए हैं। देश के सबसे अभिजात्य कॉलेज- सेंट स्टीफन कॉलेज में उनकी शिक्षा हुई है। देश की जमीनी हकीकत का कोई अंदाज उनको नहीं है। उनकी नजरें महानगरों के महंगे स्कूलों में पढ़ने वाले अमीर बच्चों पर टिकी हैं तथा उन्हीं की समस्याओं पर वे सोच रहे हैं। मंत्री बनने और घोषणाएं करने के बाद स्कूल प्राचार्यों के साथ उनकी बैठक हुई तो उसमें दिल्ली पब्लिक स्कूल जैसे दिल्ली के चंद सबसे महंगे स्कूलों के ही प्राचार्य थे।

दुनिया में छाए आर्थिक संकट ने बाजारवाद की हवा निकाल दी है, और अनियंत्रित मुक्त बाजार में आस्था को गहरा झटका दिया है। किंतु ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय शासकों ने उससे कोई विशेष सबक नहीं सीखा है। देश के जनजीवन के ज्यादातर हिस्सों को बाजार के हवाले करने के बाद अब कपिल सिब्बल शिक्षा के मुक्त बाजार की राह में रही-सही रुकावटें हटाना चाहते हैं। एक साक्षात्कार में उन्होंने कहा कि शिक्षा में उद्यमियों के प्रवेश में बाधाएं न खड़ी करें। शिक्षा से मुनाफा कमाने पर भी कोई रोक न हो। मुक्त बाजार बनाने के लिए ही वे

विदेशी विश्वविद्यालयों को बुलाना चाहते हैं। पिछली राजग सरकार के समय शिक्षा पर पहली बार पूंजीपतियों की बनाई अंबानी-बिड़ला रपट को वे लागू करना चाहते हैं। जो काम मनमोहन सिंह और अर्जुन सिंह नहीं कर पाए, वह अब कपिल सिब्बल करना चाहते हैं।

यह बाजारवाद और निजीकरण की हद है। शिक्षा कोई टी.वी., कार या मोबाईल फोन नहीं है। आधुनिक सभ्य समाज की मान्यता है कि शिक्षा सबको मिलनी चाहिए। किंतु शिक्षा के अधिकार और शिक्षा के मुक्त बाजार में एक बुनियादी अंतर्विरोध है। बाजार में उसी की चलती है जिसके पास पैसा है। जैसा पैसा, वैसा माल मिलता है। जो गरीब है, जिसके हाथ में पैसा नहीं है, उसके लिए बाजार में कोई जगह नहीं है। फिर बाजार बनेगा तो शिक्षा भी बाजारू ही मिलेगी। बाजार में घटिया और नकली माल भी चलता है, ठगी भी होती है। और बाजार में मुफ्त तो वही माल मिलता है जो सबसे खराब, सड़ा और फेंकने लायक होता है।

दरअसल शिक्षा, स्वास्थ्य, पानी आदि का बाजार एक विकृति है। उन्हें बाजार में बिकने वाला माल बना देना हमारे चरम पतन का सूचक है। बच्चों में भेदभाव करना और उन्हें शिक्षा व इलाज से वंचित करना मानव सभ्यता पर कलंक है। यह प्रगति नहीं, पीछे जाना है।

शिक्षा के मामले में अधिकार समानता, नि:शुल्कता और सरकारी दायित्व से ही मिल जायेगा। दुनिया के ज्यादातर विकसित देश किसी प्रकार की समान स्कूल प्रणाली से ही अपनी आबादी को शिक्षित कर पाए हैं। भारत में भी 50 वर्ष पहले समाजवादी चिंतक डॉ. राममनोहर लोहिया ने अमीर-गरीब के लिए एक ही स्कूल की मांग करते हुए शिक्षा में भेदभाव के खिलाफ आवाज उठाई थी। लोहिया की जन्मशताब्दी इस वर्ष देश मना रहा है। इस मौके पर भारत सरकार और कपिल सिब्बल से देश की जनता को यह कहना होगा कि वह बाजार या अधिकार दोनों में से एक को चुने। नहीं तो शिक्षा के अधिकार की बकवास बंद करे और देश के सारे बच्चों को शिक्षित करने की बात भूल जाएं।

"शिक्षा का बाज़ार एक विकृति है। किसी भी आधुनिक समाज में शिक्षा के बाज़ार का मतलब क्या है? हमारे शिक्षण संस्थानों को पहले हम शिक्षा के मंदिर कहते थो। अब वे शिक्षा की दुकानें बन गई हैं। वहां मुनाफ़ाखोरी चल रही है, घोटाले हो रहे हैं, इसमें यही होगा। भोपाल में 'व्यापम' (व्यावसायिक परीक्षा मंडल, म. प्र.) घोटाला हुआ। मेडिकल की सीटों के लिए आज 10 से 20 लाख रुपए लिए जा रहे हैं, चारों तरफ ये हो रहा है। होशंगाबाद ज़िले में 5–6 बी.एड. कॉलेज खुल गए हैं और वहां 40 हज़ार फीस है और एक लाख दे दीजिए तो बिना अटैंडेंस (उपस्थिति) के आपको सब मिल जाएगा और आप पास भी हो जाएंगे। यह शिक्षा के बाज़ार का परिणाम है। बाज़ार में उसी के लिए जगह है जिसके पास पैसा है। यदि आपके पास पैसा नहीं है तो बाज़ार में आपके लिए कोई जगह नहीं है। बाज़ार जो टुकड़े व जूठन फेंकेगा, आप उसे उठा सकते हैं।"

"सभी सरकारें शिक्षा के निजीकरण को अंधाधुंध तरीके से बढ़ावा दे रही हैं। इस देश में आज शिक्षा का धंधा सबसे ज्यादा मुनाफ़ेवाला, सबसे ज्यादा अनियंत्रित और सबसे ज्यादा तेज़ी से बढ़नेवाला धंधा बन गया है। बड़े–बड़े नेताओं से लेकर छुटभैय्ये नेता तक सब इसमें टूट पड़े हैं। इसमें अनाप–शनाप लूट व शोषण है और देश का नुकसान है।"

– सुनील
राजनीतिक दलों के साथ शिक्षा नीति पर संवाद
भोपाल, 07 अप्रैल 2014

खंड दो

राजनीतिक दलों से शिक्षा नीति एवं उससे उभरे राष्ट्रीय शैक्षिक संकट पर संवाद - चार मुद्दे, चार सवाल

07 अप्रैल 2014

गांधी भवन, भोपाल

श्री सुनील

राष्ट्रीय महामंत्री, समाजवादी जन परिषद्

के जवाब

पहला मुद्दा

स्कूली शिक्षा के निजीकरण व बाज़ारीकरण की नीति

पृष्ठभूमि – सन् 1991 के वैश्वीकरण के बाद केंद्र व प्रदेश की सभी सरकारों ने लगातार स्कूली शिक्षा का निजीकरण एवं बाज़ारीकरण करने की नीति अपनाई है। यह नीति विश्व बैंक के संरचनात्मक समायोजन (स्ट्रक्चरल एडजस्टमेंट) का परिणाम था जिसके तहत शिक्षा, स्वास्थ्य एवं कल्याणकारी योजनाओं में खर्च घटाने की पूर्व शर्त थी। लेकिन साथ में सभी सरकारों द्वारा लगातार यह भी दावा किया गया कि वे सरकारी स्कूल व्यवस्था को बेहतर बनाने के लिए प्रतिबद्ध हैं। इसके बावजूद पिछले 25 सालों में सरकारी स्कूलों की तुलना में निजी स्कूलों की संख्या और वहां दर्ज विद्यार्थियों की संख्या का अनुपात लगातार बढ़ता गया है। साथ में सरकारी स्कूलों की शैक्षणिक गुणवत्ता में गिरावट लाने की तमाम नवउदारवादी नीतियां भी अपनाई गई हैं – उदा. नियमित अर्हता–प्राप्त प्रशिक्षित शिक्षकों की जगह अर्हता–विहीन, प्रशिक्षण–विहीन व वेतन–विहीन शिक्षकों की ठेके पर नियुक्ति, विद्यार्थी–शिक्षक अनुपात घटाना, एक शिक्षक द्वारा एक ही कमरे में एक से अधिक कक्षाओं को पढ़वाने की बहु–कक्षा अध्यापन की नीति, शिक्षकों से नाना प्रकार के गैर–शिक्षकीय काम करवाना आदि। निजी स्कूलों को फीस नियमन के नियमों या कानूनों और यहां तक कि हाईकोर्टों के आदेशों के बावजूद मनमाने ढंग से फीसें बढ़ाने की छूट मिली हुई है। निजी संस्थाओं को आयकर से छूट तो पहले से ही मिली हुई है जिससे केंद्र सरकार को हर साल हजारों करोड़ों रुपयों के राजस्व का घाटा होता रहा है। सर्व शिक्षा अभियान और तथाकथित 'शिक्षा अधिकार कानून, 2009' में इन्हीं नीतियों का वैधानीकरण भी किया गया है। 11वीं योजना से शिक्षा का निजीकरण तेज़ करने के लिए पीपीपी (पब्लिक–प्राइवेट पार्टनरशिप) के तहत सार्वजनिक धन कारपोरेट घरानों, एनजीओ व धार्मिक संस्थाओं को बांटा जा रहा है – कभी फीस भरपाई के बहाने, कभी सस्ती जमीनें देकर, कभी सीधे अनुदान देकर आदि। 12वीं योजना से शिक्षा में मुनाफ़ाखोरी को जायज़ ठहरा दिया गया है। इन नीतियों के चलते सरकारी स्कूलों का बड़ी संख्या में विलयन किया जा रहा है या उन्हें बंद किया जा रहा है या नीलाम किया जा रहा है।

पहला सवाल

उक्त पृष्ठभूमि में स्
निजीकरण एवं बाज़ारी
व्यवस्था कभी भी बेह
सरकारी स्कूल व्यवस्
बनकर रह गया है।

(क) क्या आप इस
के पास वैश्वीकरण
एजेंडा है?

(ख) यदि आप इस
निजीकरण–बाज़ारी
तेज़ करते) हुए स
विगत 25 सालों
अभियानों व कानून

सुनील – समाजवादी
ही मानना है कि शिक्षा
के हर बच्चे को बिन
हमारी सरकारों की जि
यह तो हमारे आज़ादी
आज़ाद हो जाएगा त
रहेगा। सरकार ऐसी
बिना पढ़ा–लिखा न
हमारे संविधान के नी
लेकिन जैसे कि आज़
धोखा किया है वैसे ह
ओर आपका ध्यान आ
ने आज़ाद भारत में स
था। हमारा साफ़ मान
पैसेवालों के बच्चे कान
सरकारी स्कूलों में प
चलेगी। समाजवादी अ

पहला सवाल

उक्त पृष्ठभूमि में स्पष्ट है कि जब तक केंद्र व प्रदेश की सरकारें निजीकरण एवं बाज़ारीकरण को बंद नहीं करेंगी तब तक सरकारी स्कूल व्यवस्था कभी भी बेहतर नहीं हो सकती। इस कदम को उठाए बगैर सरकारी स्कूल व्यवस्था को बेहतर बनाने का दावा महज़ जुमलेबाजी बनकर रह गया है।

(क) क्या आप इससे सहमत हैं? यदि सहमत हैं तो आप की पार्टी के पास वैश्वीकरण के इस नवउदारवादी एजेंडे को पलटने का क्या एजेंडा है?

(ख) यदि आप इससे असहमत हैं तो आपकी पार्टी के पास शिक्षा के निजीकरण–बाज़ारीकरण की वर्तमान नीति को ज़ारी रखते (यानी तेज़ करते) हुए सरकारी स्कूल व्यवस्था को बेहतर बनाने के लिए विगत 25 सालों में विफल हो गई नीतियों, परियोजनाओं, स्कीमों, अभियानों व कानूनों के अलावा और कौन सा वैकल्पिक एजेंडा है?

सुनील – समाजवादी जन परिषद का बहुत स्पष्ट रूप से और शुरू से ही मानना है कि शिक्षा का बाज़ार नहीं होना चाहिए और आज़ाद भारत के हर बच्चे को बिना किसी भेदभाव के अच्छी शिक्षा उपलब्ध कराना हमारी सरकारों की ज़िम्मेदारी है, जिसका वह निर्वाह नहीं कर रही हैं। यह तो हमारे आज़ादी के आंदोलन का एक सपना था कि जब देश आज़ाद हो जाएगा तब इस देश का कोई भी बच्चा अशिक्षित नहीं रहेगा। सरकार ऐसी व्यवस्था करेगी और देखेगी कि कोई भी बच्चा बिना पढ़ा–लिखा न रहे, उसको मुफ़्त व अनिवार्य शिक्षा मिले। इसे हमारे संविधान के नीति निर्देशक तत्वों में शामिल किया गया था। लेकिन जैसे कि आज़ाद हिंदुस्तान के शासकों ने और कई मामलों में धोखा किया है वैसे ही शिक्षा के क्षेत्र में भी हुआ है। मैं इस बात की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं कि समाजवादी आंदोलन ने आज़ाद भारत में सबसे पहले और प्रबल रूप से इस मुद्दे को उठाया था। हमारा साफ़ मानना है कि देश में दो तरह की शिक्षा नहीं चलेगी। पैसेवालों के बच्चे कान्वेंट स्कूल, दून स्कूल में पढ़ेंगे और साधारण बच्चे सरकारी स्कूलों में पढ़ेंगे – यह दोहरी शिक्षा आज़ाद भारत में नहीं चलेगी। समाजवादी आंदोलन ने इसके लिए एक नारा भी दिया है –

राष्ट्रपति की हो या चपरासी की संतान,
सबको शिक्षा एक समान!

यह भेदभाव ब्रिटिश भारत में चल गया अब नहीं चलना चाहिए। यह सिर्फ़ सिद्धांत की बात नहीं है। यह भेदभाव तो हमारे अनुभव व व्यवहार में भी दिखाई दे रहा है। आज शिक्षा में हमने बहुत प्रगति की है। पहले बहुत कम स्कूल थे। आज हर गांव, मोहल्ले व दूरदराज़ के गांवों में भी स्कूल खुल चुके हैं लेकिन उन स्कूलों में जो शिक्षा मिल रही है वह नाममात्र की शिक्षा है। 5वीं, 6वीं, 8वीं कक्षा तक बच्चा पहुंच जाता लेकिन उसकी लिखने-पढ़ने, हिसाब करने की योग्यता बहुत कम है। ऐसा क्यों हो रहा है? ऐसा इसलिए हो रहा है कि इस देश में जितने भी पैसेवाले लोग हैं उन्होंने अपने बच्चों के लिए अलग व्यवस्था बना ली है। अब उनको इस बात की परवाह नहीं है कि सरकारी स्कूलों में पढ़ाई हो रही है या नहीं, कितने शिक्षक हैं, क्या व्यवस्था है, शिक्षक आता है या नहीं, उनको इससे कोई मतलब नहीं है। तहसीलदार, एसडीएम, कलेक्टर, विधायक, सांसद और सेठ – सबके बच्चे सरकारी स्कूलों से बाहर निजी स्कूलों में पढ़ रहे हैं।

शिक्षा का जो यह बंटवारा हुआ है इसने भारत की शिक्षा व्यवस्था को चौपट करके रख दिया है। यह हमें अपने चारों तरफ के अनुभवों में दिखाई देता है। पहले शिक्षा का यह बंटवारा नहीं था और प्राइवेट स्कूल बहुत कम थे और सारे बच्चे सरकारी स्कूलों में जाते थे, तब स्कूलों में पढ़ाई होती थी। अब नहीं होती। बात बिल्कुल साफ़ है। हमें इसे स्वीकारने में कोई कठिनाई नहीं होना चाहिए कि शिक्षा के इस बंटवारे और निजीकरण से सरकारी स्कूलों में पढ़ाई ठप्प हो रही है और होते जाएगी।

शिक्षा का बाज़ार एक विकृति है। किसी भी आधुनिक समाज में शिक्षा के बाज़ार का मतलब क्या है? हमारे शिक्षण संस्थानों को पहले हम शिक्षा के मंदिर कहते थे। अब वे शिक्षा की दुकानें बन गई हैं। वहां मुनाफ़ाखोरी चल रही है, घोटाले हो रहे हैं इसमें यही होगा, भोपाल में 'व्यापम' (व्यावसायिक परीक्षा मंडल, मध्य प्रदेश) घोटाला हुआ। मेडिकल की सीटों के लिए आज 10 से 20 लाख रुपए लिए जा रहे हैं, चारों तरफ ये हो रहा है। होशंगाबाद जिले में 5–6 बी.एड. कॉलेज खुल गए हैं और वहां 40 हज़ार फ़ीस है और एक लाख दे दीजिए तो बिना

अटेंडेंस (उपस्थिति) के आपको सब मिल जाएगा और आप पास भी जाएंगे। यह शिक्षा के बाज़ार का परिणाम है। बाज़ार मे उसी के जगह है जिसके पास पैसा है। यदि आपके पास पैसा नहीं है तो बा में आपके लिए कोई जगह नहीं है। बाज़ार जो टुकड़े व जूठन फेंके आप उसे उठा सकते हैं।

शिक्षा का बाज़ार किसी भी हालत में नहीं होना चाहिए। यदि हम चा हैं कि इस देश के सभी बच्चे भलीभांति शिक्षित हों तो शिक्षा बाज़ार खड़ा करने की इज़ाज़त बिल्कुल नहीं देना चाहिए। और सरक को ज़िम्मेदारी लेना चाहिए कि हर बच्चे को अच्छी शिक्षा मिले, संपन्न गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मिले।

बाज़ारीकरण क्यों बढ़ रहा है? निजीकरण की मांग जनता की ओर नहीं आई। यह विश्व बैंक द्वारा भारत की शिक्षा नीति और व्यवस्था प्रभावित करके शिक्षा का बाज़ारीकरण किया गया है। इसमें नेताओं अपने स्वार्थ हैं। वे सब शिक्षा के इस धंधे में कूद पड़े हैं। जितने स्कूल, कॉलेज – मेडिकल, इंजीनियरिंग, बी.एड. – सब नेताओं ने खे लिए हैं। यह आज उनका निहित स्वार्थ बन गया है। सभी सरक शिक्षा के निजीकरण को अंधाधुंध तरीके से बढ़ावा दे रही हैं। इस दे में आज शिक्षा का धंधा सबसे ज़्यादा मुनाफ़ेवाला, सबसे ज़्या अनियंत्रित और सबसे ज़्यादा तेज़ी से बढ़नेवाला धंधा बन गया बड़े-बड़े नेताओं से लेकर छुटभैय्ये नेता तक सब इसमें टूट पड़े इसमें अनाप-शनाप लूट व शोषण है और देश का नुकसान है।

समाजवादी जन परिषद का मानना है कि निजी स्कूल का मतलब भेदभाव है। जिसके पास पैसा है, उसका बच्चा ऊंचे स्कूल में पढ़ेग जिसके पास और पैसा है, उसका बच्चा विदेश पढ़ने जाएगा। जिस पास पैसा नहीं है और जो सबसे ज़्यादा उपेक्षित, गरीब व मजदूर बच्चा है, वह सरकारी स्कूल में जाएगा। शिक्षा में भेदभाव, स्वास्थ्य भेदभाव। बच्चे तो भगवान की देन हैं फिर आप उन बच्चों में भेदभ क्यों कर रहे हैं। आपकी समान अवसर की बात सिर्फ़ एक ढकोसला है शिक्षा में भेदभाव नहीं होना चाहिए। समाजवादी जन परिषद शिक्षा निजीकरण व बाज़ारीकरण का विरोध करती है।

अटैंडेंस (उपस्थिति) के आपको सब मिल जाएगा और आप पास भी हो जाएंगे। यह शिक्षा के बाज़ार का परिणाम है। बाज़ार मे उसी के लिए जगह है जिसके पास पैसा है। यदि आपके पास पैसा नहीं है तो बाज़ार में आपके लिए कोई जगह नहीं है। बाज़ार जो टुकड़े व जूठन फेंकेगा, आप उसे उठा सकते हैं।

शिक्षा का बाज़ार किसी भी हालत में नहीं होना चाहिए। यदि हम चाहते हैं कि इस देश के सभी बच्चे भलीभांति शिक्षित हों तो शिक्षा का बाज़ार खड़ा करने की इज़ाज़त बिल्कुल नहीं देना चाहिए। और सरकारों को ज़िम्मेदारी लेना चाहिए कि हर बच्चे को अच्छी शिक्षा मिले, संपन्न व गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मिले।

बाज़ारीकरण क्यों बढ़ रहा है? निजीकरण की मांग जनता की ओर से नहीं आई। यह विश्व बैंक द्वारा भारत की शिक्षा नीति और व्यवस्था को प्रभावित करके शिक्षा का बाज़ारीकरण किया गया है। इसमें नेताओं के अपने स्वार्थ हैं। वे सब शिक्षा के इस धंधे में कूद पड़े हैं। जितने भी स्कूल, कॉलेज – मेडिकल, इंजीनियरिंग, बी.एड. – सब नेताओं ने खोल लिए हैं। यह आज उनका निहित स्वार्थ बन गया है। सभी सरकारें शिक्षा के निजीकरण को अंधाधुंध तरीके से बढ़ावा दे रही हैं। इस देश में आज शिक्षा का धंधा सबसे ज़्यादा मुनाफ़ेवाला, सबसे ज़्यादा अनियंत्रित और सबसे ज़्यादा तेज़ी से बढ़नेवाला धंधा बन गया है। बड़े–बड़े नेताओं से लेकर छुटभैय्ये नेता तक सब इसमें टूट पड़े हैं। इसमें अनाप–शनाप लूट व शोषण है और देश का नुकसान है।

समाजवादी जन परिषद का मानना है कि निजी स्कूल का मतलब ही भेदभाव है। जिसके पास पैसा है, उसका बच्चा ऊंचे स्कूल में पढ़ेगा। जिसके पास और पैसा है, उसका बच्चा विदेश पढ़ने जाएगा। जिसके पास पैसा नहीं है और जो सबसे ज़्यादा उपेक्षित, गरीब व मजदूर का बच्चा है, वह सरकारी स्कूल में जाएगा। शिक्षा में भेदभाव, स्वास्थ्य में भेदभाव। बच्चे तो भगवान की देन हैं फिर आप उन बच्चों में भेदभाव क्यों कर रहे हैं। आपकी समान अवसर की बात सिर्फ़ एक ढकोसला है। शिक्षा में भेदभाव नहीं होना चाहिए। समाजवादी जन परिषद शिक्षा में निजीकरण व बाज़ारीकरण का विरोध करती है।

दूसरा मुद्दा

'पड़ोसी स्कूल' पर आधारित 'समान स्कूल व्यवस्था' का सवाल

पृष्ठभूमि – आज़ादी की लड़ाई के दौरान समानता या बराबरी की नींव पर खड़ी और सभी प्रकार के भेदभावों से मुक्त एक राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था की कल्पना की गई थी। सन् 1938 में हरिपुरा (बारडोली, गुजरात) में आयोजित कांग्रेस के अखिल भारत सम्मेलन में महात्मा गांधी की प्रेरणा से प्रस्ताव पारित हुआ कि आज़ाद भारत में सभी बच्चों के लिए आठवीं कक्षा तक मुफ़्त और अनिवार्य शिक्षा लागू होगी। बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर के नेतृत्व में संविधान में बराबरी और भेदभाव से मुक्त भारत बनाने के सिद्धांत क्रमशः अनुच्छेद 14 व 15(1) में शामिल किए गए जिनको नज़रअंदाज करना संविधान के बुनियादी ढांचे का उल्लंघन होगा। संविधान का सामाजिक न्याय का एजेंडा (अनुच्छेद 16) इन सिद्धांतों के आधार पर ही सार्थक हो जाता है। इस बुनियाद पर हमारी भेदभावपूर्ण जाति व्यवस्था को तोड़ना संभव हो सकता है, जिसके संघर्ष के प्रतीक महात्मा फुले और बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर आज पूरे देश को प्रेरित कर रहे हैं। इस समृद्ध ऐतिहासिक विरासत की पृष्ठभूमि में कोठारी आयोग रपट (1966) ने पूरे देश के लिए 'समान स्कूल व्यवस्था' की अनुशंसा की जिसके तहत हर स्कूल एक ऐसा 'पड़ोसी स्कूल' होगा जिसके निर्धारित पड़ोस में रहनेवाले हर परिवार को अपने बच्चों को उसी स्कूल में पढ़ाना होगा, चाहे वह परिवार किसी पूंजीपति या मंत्री का हो, चाहे किसी खेत मज़दूर या चपरासी का। कोठारी आयोग का मानना था कि लोकतंत्र में निजी स्कूलों की कोई जगह नहीं हो सकती चूंकि वे भेदभाव को जन्म देते हैं।

सन् 1986 में संसद द्वारा सर्वसम्मति से पारित 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति' में एक राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था के तहत कोठारी आयोग की 'पड़ोसी स्कूल' पर आधारित 'समान स्कूल व्यवस्था' की अनुशंसा को लागू करने का संकल्प लिया गया (खंड 3.1 व 3.2)। यह दीगर बात है कि उसी नीति में औपचारिकेतर शिक्षा केंद्रों व नवोदय विद्यालयों का प्रावधान करके बहु–परती स्कूल व्यवस्था खड़ी करने के बीज भी डाले गए। बहरहाल, सन् 1992 में संसद ने एक बार फिर सर्वसम्मति से संशोधित 'राष्ट्रीय

शिक्षा नीति' में 'समान स्कूल व्यवस्था' की उपरोक्त अवधारणा पर राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था खड़ी करने के संकल्प पर मोहर लगा दी। लेकिन विडंबना है कि उच्च वर्गों व उच्च जातियों की ताकतों के दबाव में सन् 1986 से ही संवैधानिक बुनियाद पर टिकी इस अवधारणा को शिथिल करने और तोड़ने की नीतियां बनने लगीं। सन् 1991 के बाद वैश्वीकरण के तहत शुरू की गई नवउदारवादी नीतियों ने पूरी स्कूल व्यवस्था को बहु–परती (मल्टी–लेयर्ड) स्कूल व्यवस्था में बदल दिया – हर आर्थिक वर्ग और हर जाति के लिए अलग–अलग परतें। यहां तक कि सरकारी व निजी दोनों व्यवस्थाएं बहु–परती बन गईं। पूरे देश को परतों में बांटने की यह प्रक्रिया जिन दौरों में आगे बढ़ी उनमें विभिन्न पार्टियों के गठबंधन सत्ता में रहे लेकिन हरेक ने इस नीति को और पुख्ता किया – युनाइटेड फ्रंट, एनडीए, यूपीए–1 व यूपीए–2 (1996 से 2014 तक)। आज आज़ादी की लड़ाई और संविधान का यह परिवर्तनकामी सपना इतिहास के पन्नों में खो चुका है, हालांकि संसद द्वारा दो बार पारित 1986 और 1992 की नीतियां अभी भी चुनौती बनी हुई हैं।

इतिहास दो हकीकतों का गवाह है। पहला, दुनिया का कोई भी मुल्क नहीं है जिसने सरकार द्वारा वित्त–पोषित 'समान स्कूल व्यवस्था' के बगैर अपने देश के सभी बच्चों को शिक्षा मुहैया कराने में सफलता पाई हो – चाहे वह पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का मुल्क हो चाहे समाजवादी अर्थव्यवस्था का। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के मुल्कों में अमरीका, कनाडा, फ्रांस, जर्मनी, फ़िनलैंड व जापान गिनाए जा सकते हैं और समाजवादी अर्थव्यवस्था के मुल्कों में पूर्व सोवियत संघ व आज के क्यूबा उल्लेखनीय हैं। आज वेनेजुएला भी उसी राह पर आगे बढ़ रहा है। दूसरा, दुनिया का कोई भी मुल्क नहीं है जिसने सार्वभौमिक शिक्षा का मकसद निजी स्कूल व्यवस्था के ज़रिए पूरा किया हो। जिस भी देश ने यह मकसद पूरा किया उसने पूर्व–प्राथमिक (नर्सरी, केजी) से कक्षा 12 तक सरकार द्वारा वित्त–पोषित व पूरी तौर पर मुफ़्त शिक्षा व्यवस्था के ज़रिए ही किया है। तीन दशक पहले नोकिया मोबाइल बनानेवाले फ़िनलैंड की सरकार ने सभी निजी संस्थानों का अधिग्रहण करके 'समान स्कूल व्यवस्था' स्थापित की और आज उसकी शिक्षा व्यवस्था की गिनती दुनिया की सर्वश्रेष्ठ व्यवस्थाओं में होने लगी है। यह इतिहास हमें पूछने कि लिए मजबूर करता है कि किस आधार पर भारत की नवउदारवादी

शिक्षा नीति इन दोनों ऐतिहासिक हकीकतों को झुठलाने का रास्ता अपना रही है?

दूसरा सवाल

(क) क्या आपकी पार्टी पूर्व–प्राथमिक (नर्सरी, केजी) से कक्षा 12 तक पूरी तौरपर मुफ़्त व गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देनेवाली 'पड़ोसी स्कूल' पर आधारित 'समान स्कूल व्यवस्था' की अवधारणा को मानती है?

क्या आपका घोषणापत्र इसको लागू करने का संकल्प लेता है? यदि हां, तो क्या आपकी पार्टी सभी निजी स्कूलों का सरकार द्वारा अधिग्रहण यानी राष्ट्रीयकरण करवाने को तैयार है जैसा कि 1971 में निजी बैंकों का हुआ था? क्या आपकी पार्टी इस व्यवस्था को ज़मीन पर उतारने के लिए स्कूलों के निजीकरण व बहु–परती व्यवस्था को बढ़ावा देनेवाले तथाकथित 'शिक्षा अधिकार कानून, 2009' को संशोधित करने हेतु संसद में संघर्ष करने का वायदा देगी?

(ख) यदि आपकी पार्टी पूर्व–प्राथमिक (नर्सरी, केजी) से कक्षा 12 तक पूरी तौरपर मुफ़्त व गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देनेवाली 'पड़ोसी स्कूल' पर आधारित 'समान स्कूल व्यवस्था' की अवधारणा को नहीं मानती है तो फिर आप की पार्टी के पास बराबरी पर आधारित और भेदभाव से मुक्त मुफ़्त व गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करने का क्या एजेंडा है?

सुनील – आपने सवाल की पृष्ठभूमि में जो बात कही है, समाजवादी जन परिषद उससे सहमत है, बस एक ही अपवाद करना चाहेंगे जिसे मैं बाद में बताउंगा। समान स्कूल प्रणाली को हम दो–तीन कारणों से ज़रूरी मानते हैं। पहला, सारे बच्चों को भलीभांति शिक्षित करना है तो भारत तो क्या पूरी दुनिया में समान स्कूल प्रणाली के अलावा और कोई विकल्प नहीं है। जो समान स्कूल प्रणाली को लागू नहीं करना चाहते उनका इरादा इस देश के सभी बच्चों को शिक्षित करने का नहीं है। हमारा शासक वर्ग चाहता है कि देश के सभी बच्चे शिक्षित न हो। यदि सभी बच्चे शिक्षित हो जाएंगे तो पैसेवालों के बच्चों की सुविधाएं और भविष्य में आगे बढ़ने के उनके रास्ते कम हो जाएंगे, प्रतिस्पर्धा बढ़ जाएगी। इसलिए समान स्कूल प्रणाली लागू नहीं की जा रही है और सरकारी स्कूलों को तेज़ी से खत्म किया जा रहा है।

दूसरी बात। सरकारी स्कूलों की व्यवस्था सुधारी जाए और इसे सुधारने का एक ही उपाय है कि उन स्कूलों में सारे बच्चे पढ़ें – चाहे वे गरीब, मज़दूर के हों या पैसेवालों के। यह तभी होगा जब आप ऐसा नियम/कानून बनाएंगे कि एक मोहल्ले, एक गांव में रहनेवाले सभी बच्चे, लड़का–लड़की, सभी जाति के बच्चे एक ही स्कूल में पढ़ेंगे। ऐसा करने के लिए सरकार पर दबाव बनाना होगा।

तीसरी बात। एक सभ्य समाज में बच्चों में भेदभाव नहीं होना चाहिए, सबको पढ़ने व आगे बढ़ने के समान अवसर मिलने चाहिए। यह बात सुनकर लोग अक्सर कहते हैं कि आप तो कम्युनिस्ट व्यवस्था बनाना चाहते हैं। हमारा मानना है कि दुनिया के घोर पूंजीवादी देशों में भी यह व्यवस्था (समान स्कूल प्रणाली) है तो हम इसे लागू क्यों नहीं कर सकते। समान स्कूल प्रणाली अमरीका, कनाडा, जर्मनी, फ्रांस, नार्वे और फ़िनलैंड में है। कुछ लोग कहते हैं कि सरकारी स्कूलों में अच्छी (गुणवत्तापूर्ण) शिक्षा नहीं होती है। दुनिया में सबसे अच्छी शिक्षा व्यवस्था फ़िनलैंड की मानी जाती है और बीच–बीच में जिसकी जांच भी होते रहती है। वहां समान स्कूल प्रणाली लागू है और एक भी प्राइवेट स्कूल नहीं है। जबकि अमरीका व ब्रिटेन में कुछ प्राइवेट स्कूल हैं। फ़िनलैंड में सरकार की तरफ से बिना किसी भेदभाव के सभी बच्चों को अच्छी शिक्षा मिलती है। वहां शिक्षकों को इंजीनियर और अफ़सरों जैसा वेतन दिया जाता है।

यदि देश के सारे बच्चों को बिना किसी भेदभाव के अच्छी शिक्षा देना हमारी प्राथमिकता है, हमारा लक्ष्य है तो समान स्कूल प्रणाली के अलावा और कोई विकल्प नहीं है। इसे जल्दी–से–जल्दी लागू किया जाना चाहिए। कोठारी आयोग ने साठ के दशक में यही कहा था, लेकिन हमारी सरकारों ने इसे आज तक लागू नहीं किया।

समाजवादी जन परिषद की ओर से एक ही अपवाद है कि यदि कोई प्राइवेट स्कूल समान स्कूल प्रणाली स्वीकारता है और फ़ीस व मुनाफ़े के बगैर स्कूल चलाता है तो ठीक है। आप कहेंगे कि कोई बिना मुनाफ़े के क्यों स्कूल चलाना चाहेगा, आप सही कह रहे हैं। आज प्राइवेट स्कूल का मतलब ही मुनाफ़ा कमाना हो गया है। लेकिन कुछ स्कूल चैरिटी के मकसद से हो सकते हैं। वे अपना पैसा इकट्ठा करके अपने खर्चे पर स्कूल चलाएंगे। ऐसे कुछ स्कूल हो सकते हैं।

मूलतः सरकार को इसकी ज़िम्मेदारी लेनी होगी। आप कहेंगे कि सरकार के पास इतना पैसा कहां है। इसमें हमारा मानना है कि हमारी सरकारें दुनियाभर से हथियार खरीदने में बहुत पैसा बर्बाद करती हैं। मैं बताना चाहता हूं कि पिछले काफ़ी समय से दुनिया में हथियारों का सबसे बड़ा खरीददार हमारा देश है। हमारा देश दुनिया के गरीब मुल्कों में से एक है लेकिन हथियार और हवाई जहाज खरीदने के लिए हमारे पास पैसा है। अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा देने के लिए हमारी सरकार के पास पैसा नहीं है। यह कोरी बकवास है। बात यह है कि हथियारों और हवाई जहाज की खरीद पर भारी कमीशन मिलता है।

आम आदमी पार्टी के हमारे साथी अभी भ्रष्टाचार की बात कर रहे थे, वह सही है लेकिन भ्रष्टाचार को हमें व्यापक संदर्भ में देखने की ज़रूरत है। नीतियों का ये जो भ्रष्टाचार है यह सबसे बड़ा भ्रष्टाचार है। समान स्कूल प्रणाली जल्दी से लागू हो इसके लिए देशभर में जनमत बनाना होगा। इसे लेकर लोगों की जो शंकाएं हैं उन्हें दूर करना होगा। देश में बड़ा जनांदोलन खड़ा करना होगा।

मैं एक बात कहना चाहता हूं कि हम राष्ट्रीयकरण की बात से सहमत हैं लेकिन हम उसे सामाजीकरण कहते हैं। राष्ट्रीयकरण एक केंद्रीकृत व्यवस्था का हिस्सा बन जाएगा तो उसमें कई समस्याएं आ जाएंगी। समाजवादी जन परिषद की कल्पना है कि पैसा सरकार का हो और नियंत्रण व समन्वयन स्थानीय समाज का हो। वो ग्राम पंचायत, नगर पालिका, अभिभावक–शिक्षक एसोसिएशन का हो सकता है। लेकिन साधन सरकार को देने होंगे और उसमें मुनाफ़ाखोरी की कोई गुंजाइश नहीं होगी। स्थानीय समाज उसको कुछ निश्चित नियमों व नीतियों के तहत चलाएगा, तो यह व्यवस्था बेहतर होगी। राष्ट्रीयकरण में नौकरशाही की संभावना और केंद्रीकरण होने से कुछ समस्याएं आती हैं।

तीसरा मुद्दा

उच्च शिक्षा का निजीकरण–बाज़ारीकरण – वैश्विक बाज़ार का एजेंडा

पृष्ठभूमि – विभिन्न राजनीतिक दलों या उनके गठबंधनों ने 1990 के दशक में सरकारी स्कूली शिक्षा व्यवस्था को पहले बर्बाद करके निजी

स्कूलों का बाज़ार खोलने की नीति लागू की और अब सरकारी स्कूलों को तेज़ी से बंद (या विलयन) किया जा रहा है या कारपोरेट घरानों को बेचा जा रहा है। 21वीं सदी के पहले दशक में इसी तर्ज़ पर उच्च शिक्षा पर नवउदारवादी हमला शुरू हुआ। एनडीए सरकार के दौरान सन् 2000 में प्रधानमंत्री की आर्थिक सलाहकार समिति को अंबानी–बिड़ला रपट पेश की गई जिसने माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा को बाज़ार के हवाले करने के लिए पैरवी की। इस रपट पर तब से लेकर आज तक अमल हो रहा है। एनडीए सरकार ने ही उच्च शिक्षा को वैश्विक बाज़ार में खरीद–फ़रोख़्त का माल बनाने के मकसद से विश्व व्यापार संगठन–गैट्स के पटल पर रखने की पहलकदमी की जिसे यूपीए–1 ने पुख्ता किया। यूपीए–2 ने विश्व व्यापार संगठन–गैट्स के एजेंडे लिए कानूनी खाका बनाने हेतु संसद में उच्च शिक्षा–संबंधी छह बिल पेश किए जिनमें विदेशी विश्वविद्यालय बिल, वैश्विक पूंजी की उच्च शिक्षा में घुसपैठ तेज़ करने के लिए यूजीसी की जगह एक उच्च–प्राधिकार प्राप्त निकाय बतौर 'एकल खिड़की' बिल और अन्य ऐसे विधेयक पारित करवाने की पेशकश की जो सफल नहीं हो पाई। लेकिन सत्ता की होड़ में लगी अनेक पार्टियां ऐसे विधेयकों के पक्ष में हैं।

11वीं योजना से उच्च शिक्षा में पीपीपी के ज़रिए सार्वजनिक धन कारपोरेट घरानों को सौंपने और विभिन्न प्रदेश सरकारों द्वारा निजी विश्वविद्यालय अधिनियम पारित करवाने की गति तेज़ हुई। आज उच्च शिक्षा का विशाल बाज़ार केंद्र व प्रदेश सरकारों के समर्थन से मुनाफ़ाखोरी की बुनियाद पर दिन–दूनी रात–चौगुनी रफ़्तार से फल–फूल रहा है।

बहरहाल, अधिकांश निजी संस्थानों की गुणवत्ता पर गंभीर सवालिया चिह्न हैं। विडंबना यह है कि आज भी देश के सबसे आला दर्ज़े के उच्च शिक्षा संस्थान सार्वजनिक क्षेत्र में हैं – एम्स, आईआईटी, आईआईआईटी, आईआईएम, रीजनल इंजीनियरिंग कालेज, प्रदेश–स्तरीय मेडिकल कालेज या केंद्रीय विश्वविद्यालय का निजी क्षेत्र में कोई सानी नहीं है। तब भी सरकारें निजी क्षेत्र की प्रशंसा करते नहीं अघातीं और आसमान छूती फीसों वाले 'एजुकेशन हब' के ज़रिए शैक्षिक विकास करने का ढोल पीटती हैं। दरअसल, विद्यार्थियों को दिए जानेवाला लोन (कर्ज़) संस्थानों के मालिकों के लिए होता है चूंकि सार्वजिनक धन को इस तरह पिछले दरवाजे से मालिकों को पहुंचाए बगैर इन निजी

संस्थानों का दिवालिया निकल जाएगा। अंततः लोन तो विद्यार्थियों को ही वापस करना होता है जिसके लिए उनके अभिभावकों को अपनी चल–अचल संपत्ति गिरवी रखनी या बेचनी पड़ती है। वैश्वीकरण की नीतियों के कारण लगातार रोज़गार घटने के चलते जब विद्यार्थी लोन वापस नहीं कर पाते तो उनके सामने जीवनभर हताशा या आत्महत्या के अलावा कोई और विकल्प नहीं बचता।

विगत दस सालों से कई प्रदेश सरकारें अपने कॉलेजों व विश्वविद्यालयों में साल–दर–साल विभिन्न मदों में बजट कम करती जा रही हैं। नियमित फैकल्टी के पद सीमित किए जा रहे हैं और अधिकांश पदों पर उनकी जगह तदर्थ शिक्षकों व तथाकथित 'अतिथि विद्वानों' ने ले ली है। ये संस्थान मजबूरन स्व–वित्त पोषित कोर्स खोलकर बजटीय घाटा पूरा कर रहे हैं जिसके मायने हैं कि विश्वविद्यालयों में ज्ञान का चरित्र बढ़ते क्रम में सामाजिक या विषय की ज़रूरत से नहीं वरन् वैश्विक बाज़ार की ज़रूरत से तय किया जा रहा है। सभी निजी संस्थान तो शुरू से ही अंबानी–बिड़ला रपट (2000) के बाज़ार द्वारा तय किए जानेवाले पाठ्यक्रमों के सिद्धांत पर खड़े किए गए हैं। अब सरकार द्वारा संचालित उच्च शिक्षा संस्थानों को भी उसी गर्त में ढकेला जा रहा है। इस नकारात्मक बदलाव के कारण देश एक बार फिर औपनिवेशिक गुलामी की ओर लौट रहा है जब नए ज्ञान का निर्माण पश्चिम के विकसित पूंजीवादी मुल्कों में होगा और भारत अपनी दोयम दर्ज़े की उच्च शिक्षा के लिए पेटेंट की कीमत चुकाकर महंगा ज्ञान खरीदेगा। ब्रिटिश औपनिवेशिक दौर में भारत के निर्धनीकरण के कारकों में से यह भी एक प्रमुख कारक था। यानी भारत पर बढ़ते क्रम में साम्राज्यवादी पूंजी की पकड़ मजबूत होती जाएगी और देश की संप्रभुता कमज़ोर होती जाएगी।

तीसरा सवाल

(क) क्या आपकी पार्टी उच्च शिक्षा को निजीकरण व बाज़ारीकरण के हमले से बचाने के लिए लोकतांत्रिक, धर्मनिरपेक्ष, समतामूलक, न्यायशील व प्रबुद्ध भारत का निर्माण करनेवाली उच्च शिक्षा के संवैधानिक एजेंडे को एक बार फिर स्थापित करने हेतु संसद में संघर्ष के लिए तैयार है? यदि हां, तो क्या इसका कोई सबूत पार्टी के घोषणापत्र में है? आपकी पार्टी का इस नीति परिवर्तन का एजेंडा क्या है?

(ख) यदि आपकी पार्टी शिक्षा को वैश्विक बाज़ार के हवाले नहीं करना चाहती तो क्या पार्टी के घोषणापत्र में केंद्र सरकार द्वारा उच्च शिक्षा की विश्व व्यापार संगठन–गैट्स को दी गई 'ऑफ़र' को 'दोहा राऊंड्स' के पूरा होने के पहले वापस लेने या उसके लिए जनचेतना जगाने व सरकार पर संसद में दबाव बनाने का संकल्प शामिल किया गया है?

(ग) यदि आपकी पार्टी उच्च शिक्षा के निजीकरण व बाज़ारीकरण के पक्ष में है तो लोकतांत्रिक, धर्मनिरपेक्ष, समतामूलक, न्यायशील व प्रबुद्ध भारत का निर्माण करनेवाली उच्च शिक्षा के संवैधानिक एजेंडे को स्थापित करने की पार्टी की वैकल्पिक नीति क्या होगी?

(घ) यदि आपकी पार्टी विश्व व्यापार संगठन–गैट्स के तहत उच्च शिक्षा को वैश्विक बाज़ार के हवाले करने के पक्ष में है तो भारत की संप्रभुता को बचाने व मज़बूत करने हेतु पार्टी की नीति क्या होगी?

सुनील – समाजवादी जन परिषद डब्ल्यूटीओ और गैटस् के खिलाफ है। हम मानते है कि यह साम्राज्यवादी व्यवस्था को बनाए रखने व बढ़ाने में के लिए बनाया गया है। इसको खत्म करना चाहिए। दुनिया की जनता जिस दिन जागरुक होगी यह खत्म हो जाएगी। लेकिन कम–से–कम भारत को तो डब्ल्यूटीओ (विश्व व्यापार संगठन) से बाहर आना चाहिए – सिर्फ़ शिक्षा ही नहीं बल्कि खेती और तमाम चीज़ों के मामलों में भी डब्ल्यूटीओ भारत के राष्ट्रीय हितों के लिए नुकसानदेह एवं शोषणकारी है। हम एफ़डीआई (विदेशी प्रत्यक्ष निवेश) के भी खिलाफ़ हैं – केवल शिक्षा में ही नहीं वरन् खुदरा व्यापार के ज़रिए पूरे देश को लूटने, बर्बाद करने के लिए लाए जा रहे एफ़डीआई के भी। समाजवादी जन परिषद का मानना है कि इस पर तुरंत रोक लगनी चाहिए।

आपने लिखा है कि इस तरह हम औपनिवेशिक गुलामी की ओर लौट रहे हैं। हमारा मानना है कि औपनिवेशिक गुलामी में हम आज जी रहे हैं। कम–से–कम ज्ञान और बौद्धिक स्तर पर तो हमारी गुलामी खत्म ही नहीं हुई। देश राजनीतिक रूप से आज़ाद हो गया पर कई मायनों में हम लोग बौद्धिक रूप से गुलाम हैं। लेकिन यह जो नए प्रस्ताव आ रहे हैं इससे गुलामी बढ़ेगी और देश पीछे की ओर जाएगा। ज्ञान का भी साम्राज्यवाद होता है जिसके हम शिकार हैं और भविष्य में और भी शिकार होंगे। मैं यह बताना चाहता हूं कि हम वैचारिक लेनदेन व

विनिमय के खिलाफ़ नहीं हैं। दुनिया के बाकी देशों से हम भी वैचारिक लेनदेन व विनिमय करना चाहते हैं लेकिन बराबरी के स्तर पर।

उच्च शिक्षा व विश्वविद्यालय में आपस में विनिमय, लेनदेन या सहयोग हो सकता है लेकिन गैटस् (जनरल एग्रीमेंट ऑन ट्रेड एंड सर्विसेज़) या नई व्यवस्था के अंतर्गत आज जो विदेशी विश्वविद्यालय देश में लाए जा रहे हैं (यथा, संसद में लंबित विधेयक) वे ज्ञान व सांस्कृतिक विनिमय के लिए नहीं बल्कि हमारे देश को लूटने के लिए आ रहे हैं। निश्चित रूप से इसके लिए हमें सावधान रहना चाहिए और विरोध करना चाहिए।

समाजवादी जन परिषद का मानना है कि इस मामले का विरोध सिर्फ़ संसद में ही करने से काम नहीं चलेगा बल्कि सड़क पर भी संघर्ष करने की ज़रूरत है।

चौथा मुद्दा

उच्च शिक्षा में 'समानता' बनाम 'समावेशन' (इन्क्ल्यूज़न)

पृष्ठभूमि – पहली कक्षा में दाखिल होने वाले सभी वर्गों व जातियों के बच्चों में से केवल 17–18 फीसदी ही 12वीं कक्षा के पार जा पाते हैं, शेष 80 फीसदी से अधिक विभिन्न कारणों से पहले ही शिक्षा व्यवस्था के बाहर हो जाते हैं। आदिवासी बच्चों में से बमुश्किल 6 फीसदी, दलितों में से 8 फीसदी, मुस्लिमों में से 9 फीसदी और 'अन्य पिछड़े वर्गों' के 10 फीसदी बच्चे ही 12वीं कक्षा के पार जा पाते हैं। यानी मोटे तौरपर पहली कक्षा में पढ़ाई शुरू करनेवाले वाले पिछड़ी जातियों के बच्चों में से 90 फीसदी या उससे अधिक न केवल उच्च शिक्षा से वंचित रह जाते हैं बल्कि सामाजिक न्याय के मुख्य एजेंडे यानी आरक्षण के लाभ से भी। आखिरकार, उच्च शिक्षा और आरक्षण दोनों के दरवाज़े 12वीं कक्षा के बाद ही खुलते हैं। इसीतरह उच्च शिक्षा से जुड़े हुए रोज़गार की तमाम संभावनाओं से भी 90 फीसदी या उससे अधिक बच्चे वंचित रह जाते हैं। दूसरे शब्दों में, 11वीं योजना से बहुप्रचारित 'समावेशन' (इन्क्ल्यूज़न) का सारा एजेंडा पिछड़ी जातियों के महज़ 10 फीसदी या उससे भी कम युवाओं में से मुट्ठीभर के लिए है। पहले 90 फीसदी या उससे अधिक को शिक्षा से वंचित करनेवाला और फिर 10 फीसदी में से कुछ को 'समावेशित' करने वाले इस फ़रेब के खिलाफ़

और समानता के संवैधानिक सिद्धांत पर शिक्षा व्यवस्था का पुनर्निर्माण करने के पक्ष में संसद में कौनसी पार्टी आवाज़ उठाएगी ताकि सबको उच्च शिक्षा एवं सामाजिक न्याय से लाभान्वित होने के समान अवसर का हक मिल सके?

चौथा सवाल

क्या आपकी पार्टी को पिछड़ी जातियों के मुट्ठीभर युवाओं के लिए 'समानता' के संवैधानिक सिद्धांत की जगह 'समावेशन' का नवउदारवादी सिद्धांत मंजूर है?

यदि नहीं, तो पार्टी के घोषणापत्र में बड़े पैमाने पर वंचित करने वाली 'समावेशन' की इस वर्तमान नीति को पलटने के लिए क्या एजेंडा अपनाया गया है?

यदि हां, तो पार्टी के घोषणापत्र में तथाकथित 'समावेशन' के ज़रिए लोकतांत्रिक, धर्मनिरपेक्ष, समतामूलक और न्यायशील भारत के निर्माण का क्या एजेंडा है?

सुनील – समाजवादी जन परिषद आपकी बात से सहमत है। मैं इसमें बस एक बात जोड़ना चाहता हूं जो प्रो. हरगोपाल ने उच्च शिक्षा में समावेशन की बात पर कही थी, समाजवादी जन परिषद उसे मानती है। हमारे कपिल सिब्बल साब बार–बार कहते थे कि हमारे देश के 10–11 प्रतिशत बच्चे ही उच्च शिक्षा में जाते हैं तो इसे बढ़ाकर 30–33 प्रतिशत करना है, तो यह कैसे होगा। सवाल है कि यह आज क्यों नहीं हो रहा है। आज तो बच्चे 11वीं, 12वीं तक ही नहीं पहुंच पा रहे हैं। पहले यह सुनिश्चित करना होगा कि बच्चे वहां तक कैसे पहुंचे। जो 12वीं पास कर लेते हैं वे उच्च शिक्षा में जाना चाहते हैं पर मजबूरियों के कारण नहीं जा पा रहे। उच्च शिक्षा का खर्चा उठाने की उनकी हैसियत नहीं है। तो आप जो समावेशन का रास्ता दिखा रहे हैं वह निजी विश्वविद्यालयों को प्रोत्साहन दे रहा है। चूंकि 12वीं पास बच्चों का जो यह बड़ा हिस्सा आज बाहर है वह फिर भी बाहर ही रहेगा क्योंकि उसके पास फ़ीस चुकाने का पैसा नहीं है। उनको समाविष्ट करने का एक ही तरीका है और वह है उच्च शिक्षा मुफ़्त हो। सरकार सुनिश्चित करे कि आर्थिक कठिनाईयों के कारण कोई भी बच्चा आगे पढ़ने से न रुके और उनके लिए पर्याप्त अवसर हों।■

इसलिए राह संघर्ष की हम चुनें!

साथियो,

उदारीकरण की मार से कोई भी बचनेवाला नहीं है। आदिवासी, किसान, मज़दूर, कारीगर, मछुआरे, कर्मचारी, छात्र, युवा, महिला, व्यापारी हर आम और खास आदमी इसकी चपेट में आनेवाला है। देश के उद्योग–धंधे, कृषि व्यवस्था सब चौपट हो जाएगी। शिक्षा एवं चिकित्सा जैसी मूलभूत सुविधाएं भी आम आदमी की पहुंच से दूर हो जाएंगी। इस दौर की गुलामी अंग्रेजों की गुलामी से ज़्यादा खतरनाक साबित होनेवाली है जिसमें कहने को तो संप्रभु राष्ट्र–राज्य रहेगा पर इसका संचालन कहीं और से होगा।

उदारीकरण के इस दौर में हमें देश की अधिकांश बड़ी पार्टियों के नेताओं से कोई उम्मीद नहीं है। क्योंकि वो तो स्वयं इस लूट में शामिल हैं। ऐसे कठिन समय में हम युवाओं, महिलाओं, किसानों, मज़दूरों को एक नई आज़ादी की लड़ाई लड़ना ही होगी। आज फिर हर व्यक्ति इस लड़ाई में कुछ–न–कुछ भूमिका अदा कर सकता है। आपका लिखना, पढ़ना, संगठन बनाना, उसको सक्रिय करना, परचे बांटना, भाषण देना, नारे लगाना, बैठक करना, गीत गाना, पोस्टर बनाना–लगाना अथवा बातचीत में इन मुद्दों की असलियत जानकर उन पर असहमति दर्ज़ कराना भी विरोध का तरीका हो सकता है। अगर अभी भी हमने यह लड़ाई नहीं लड़ी तो न हम रहेंगे न आप, न देश रहेगा, न समाज और आनेवाली पीढ़ी भी हमें माफ़ नहीं करेगी। तो आप अपनी भूमिका पहचानें और आज से ही **'संघर्ष की राह'** पर निकल पड़ें। शायद यही आज के समय का तकाज़ा है। ध्यान रखें . . . . .

– **सुनील** (2001)*

*स्रोत : 'उदारीकरण का असली चेहरा', मध्य प्रदेश व छत्तीसगढ़ के जन संगठन और समाजवादी जन परिषद, म. प्र., जनवरी 2001, तीसरा आवरण।

'वैकल्पिक विकास के लिए वैकल्पिक राजनीति'

"जब तक आधुनिक विकास नीति से लेकर, आधुनिक शासन व्यवस्था एवं पूंजीवाद तक इसका विश्लेषण करके इनके विकल्प के निर्माण की तैयारी के साथ . . . वैचारिक तैयारी नहीं होगी तब तक कोई भी आंदोलन बहुत ज्यादा आगे नहीं बढ़ सकता। तो बात घूम फिर कर वैकल्पिक राजनीति की बात पर आ जाती है। . . . आप इस दुनिया को बदलने के प्रति कोई तीव्रता महसूस कर पा रहे हैं या नहीं? . . . आप कोई विकल्प देख पा रहे हैं या नहीं? या आपने सोच लिया है कि अब तो पूंजीवाद का कोई विकल्प नहीं है या अब ग्लोबलाईज़ेशन का कोई विकल्प नहीं है। . . . यदि आपने यह मान लिया है तो आप न तो वैकल्पिक राजनीति का निर्माण कर सकते हैं और न ही राजनीतिक विकल्प का।"

"यह जो वैचारिक शून्य आया है यह बहुत खतरनाक है। बहुत से लोग यह भी मानते हैं कि . . . विचारधारा की कोई ज़रूरत नहीं है . . .यह सोच दिशाहीनता की ओर ले जाती है। . . . दुनिया को समझने और समझकर दुनिया को बदलने का एक ढांचा तो बनाना ही पड़ेगा, उसी को आप विचारधारा कह सकते हैं। वह समाजवादी विचारधारा हो, सर्वोदयी विचारधारा हो, मार्क्सवादी विचारधारा हो या कोई और विचारधारा हो।"

"सबसे बड़ा सवाल यही है कि क्या दुनिया को बदलकर एक नया समतामूलक, न्यायमूलक समाज बनाना संभव है? यदि आप ऐसा मानते हैं तो एक वैकल्पिक राजनीति निकलेगी और यदि हमने मान लिया कि यह संभव नहीं है तो कोई वैकल्पिक राजनीति नहीं निकलेगी। . . . कांग्रेस की जगह भाजपा आती रहेगी, भाजपा की जगह कांग्रेस आती रहेगी या कोई तीसरी भी आएगी तो वह उन्हीं का नया संस्करण होगी। . . . तो एक नए समाजवाद की कल्पना करें, जिसमें [illegible] पूंजीवादी व्यवस्था का विकल्प ढूंढने के साथ–साथ विकास के [illegible]ॉडल और एक नई सभ्यता की कल्पना करें। . . . सिर्फ राजनीति[illegible]ल्प का ही नहीं, वैकल्पिक राजनीति का जो मामला है वह अनि[illegible] से नए समाजवाद की कल्पना और उसके विचार से जुड़ा है।"

– सुनील*

*स्रोत : 'राजनीति का विकल्प और विकल्प की राजनीति', संपाद[illegible]न्मय मिश्र, प्रकाशक – स्व. ओमप्रकाश रावल स्मृति निधि एवं सर्वोदय प्रेस सर्वि[illegible], 2008, पृ. 5–6.

लेखक परिचय

जन्म – 04 नवंबर 1959
निधन – 21 अप्रैल 2014

समाजवादी जन परिषद् के राष्ट्रीय महामंत्री एवं समाजवादी पत्रिका 'सामयिक वार्ता' के संपादक सुनील का जन्म मध्य प्रदेश के रामपुरा (ज़िला मंदसौर) में। बीए तक की शिक्षा रामपुरा के सरकारी स्कूलों और महाविद्यालय में। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली से अर्थशास्त्र में एमए। विद्यार्थी जीवन में ही समाजवादी चिंतक किशन पटनायक से प्रेरित समता संगठन के समता विद्यार्थी युवजन सभा में सक्रिय। इसी दौरान वे ज़िला होशंगाबाद के केसला प्रखंड (मध्य प्रदेश) के आदिवासियों के बीच काम कर रहे समाजवादी युवक राजनारायण से जुड़े। मई 1985 में सुनील जेएनयू में पीएचडी का शोधकार्य छोड़कर केसला में 'किसान आदिवासी संगठन' के संघर्ष में राजनारायण के हमसफ़र बन गए।

अप्रैल 1990 में राजनारायण के सड़क दुर्घटना में निधन के बाद आदिवासियों का संघर्ष सुनील के नेतृत्व में आगे बढ़ा। तवा बांध से 1974–75 में विस्थापित आदिवासियों को 1996 में लंबे संघर्ष के बाद राज्य सरकार से तवा जलाशय में मछली पालन व बिक्री करने और जलाशय के तट पर खेती करने का हक प्राप्त। 'तवा मत्स्य संघ' सहकारी समिति के ज़रिए प्राकृतिक संसाधनों पर सामुदायिक नियंत्रण की देश के सामने 'संघर्ष और निर्माण' की मिसाल। इसके बावजूद 2006 में लीज़ के दूसरे नवीनीकरण से भाजपा सरकार द्वारा सिरे से इंकार जिसके चलते तवा बांध से विस्थापित आदिवासी संवैधानिक हकों से एक बार फिर वंचित। इस अनुभव के बाद सुनील ने अपनी ऊर्जा 'वैकल्पिक विकास के लिए वैकल्पिक राजनीति' के सवाल पर फ़ोकस कर दी।

पिछले कई सालों से सुनील द्वारा उक्त सवाल पर विचार–विमर्श के लि[illegible] में भ्रमण और लेखन। विभिन्न सामाजिक–राजनीतिक मुद्दों पर सरल भा[illegible] विश्लेषण करती हुई अनेक पुस्तिकाएं। जल–जंगल–ज़मीन और जी[illegible] विभिन्न जनांदोलनों को समर्थन। वैश्वीकरण की नवउदारवादी नीतियों [illegible] विरोधी और पूंजीवादी विकास के मॉडल की जगह समाजवादी वि[illegible] वैकल्पिक मॉडल के पैरवीकार। हालिया सालों में वे वैकल्पिक राज[illegible] सिद्धांतकार के रूप में उभरे।

सुनील 'जनांदोलनों के राष्ट्रीय समन्वय' एवं 'जन संघर्ष मोर्चा, मध्य प्रदेश[illegible] भी सक्रिय। विगत पांच सालों से 'अखिल भारत शिक्षा अधिकार मंच' के अध्यक्ष [illegible]डल के सदस्य और 'केजी से पीजी' तक राज्य द्वारा वित्त–पोषित समान शिक्षा व्यवस्था स्थापित करने व शिक्षा के निजीकरण व बाज़ारीकरण को रोकने के आंदोलन में अहम भूमिका।

सहयोग राशि – ₹ 25/-